प्रकाश

आगमप्रकाशन समिति द्वारा जिस द्रुत गति से आगमों का प्रकाशन हो रहा है, आशा है उससे
मी महानुभावों तथा हमारे अर्थसहायक सज्जनों को अवश्य सन्तोष होगा। आचारांग (प्रथम तथा द्वितीय
उपासकदशांग और ज्ञाताधर्मकथांग के पश्चात् 'अन्तगडदसाओ' पाठकों के कर-कमलों में पहुंचाया जा रहा है।
स्वकाल बाद ही 'अनुत्तरोववाइय' भी पहुंचने वाला है। इसका मुद्रण लगभग समाप्त हो गया है और श
ह तैयार हो जाएगा। सूत्रकृतांग और स्थानांगसूत्र मुद्रण के लिए प्रेस में दिये जा रहे हैं। समवायांग का
ो चुका है, और संशोधन हो रहा है। भगवती और प्रज्ञापनासूत्र का अनुवाद हो रहा है। प्रश्नव्याकर
ौपपातिक सूत्र का सम्पादन लगभग पूर्ण होने में है।

उल्लेख करते हुए अतीव प्रसन्नता होती है कि जिनवाणी के प्रचार-प्रसार के इस पावन अनुष्ठ
समाज के ज्ञानप्रेमी सज्जनों ने अच्छा अनुमोदन किया है और विद्वद्वर्ग ने भी इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा
अब तक प्राप्त सम्मतियों से—जिनमें से कुछ मुद्रित हो चुकी हैं, यह स्पष्ट है।

अन्तगडसूत्र का अनुवाद सुविख्यात विदुषी उज्ज्वलकीर्ति स्व० महासती श्रीउज्ज्वलकुमारीज
सुशिष्या तथा आचार्यसम्राट् राष्ट्रसन्त श्रद्धेय श्री आनन्दऋषिजी म० की आज्ञानुवर्तिनी विदुषी म
श्रीदिव्यप्रभाजी ने किया है। महासतीजी एम. ए. और पी-एच डी. पदवियों से विभूषित हैं। आपकी मा
गुजराती है, फिर भी हिन्दी भाषा में यह अनुवाद प्रस्तुत करके आपने हमें जो अमूल्य सहयोग दिया है, उसके
आभार प्रकट करने के लिए शब्द पर्याप्त नहीं हैं। ग्रन्थमाला के सम्पादक प. श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल ने
को परिमार्जित किया है, फिर भी यदि गुजराती भाषा की अस्पष्ट झलक कहीं दिखाई दे तो भी मूल भा
आशय को स्पष्ट करने में कहीं कुछ भी न्यूनता नहीं आने पाई है। पर्याप्त परिश्रम करके महासती जी
संस्करण को सर्वजनभोग्य और सुन्दर बनाने का सफल प्रयास किया है। परिशिष्ट देने से शोध कर
विद्यार्थियों के लिए भी यह विशेष उपयोगी सिद्ध होगा। हम आशा करते हैं कि अन्य विदुषी महासति
साध्वी श्रीदिव्यप्रभाजी का अनुकरण करके आगे आएँगी और इस पवित्र आयोजन में हमें सहयोग प्रदान करें

हमारे समाज के विख्यात विद्वान् तथा मनीषी साहित्यकार श्रीदेवेन्द्र मुनिजी शास्त्री ने इस आग
प्रस्तावना लिखी है। प्रस्तावना में आगम का सांगोपांग निदर्शन करा दिया गया है। प्रारम्भ से ही आपका
सहयोग हमें प्राप्त रहा है और पूर्ण विश्वास है कि वह भविष्य में भी प्राप्त रहेगा।

श्रमणसंघ के युवाचार्य सर्वतोभद्र पण्डितप्रवर श्री मधुकर मुनिजी म. के प्रति हम अपनी कृतज्ञता प्र
करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं जिनके दिशानिर्देशन में यह प्रकाशनकार्य हो रहा है, जो प्रस्तुत प्रका
प्रधान सम्पादक हैं और जिनकी दूरदर्शिता और जिनवाणीप्रेम के कारण ही हमें भी इस सेवा का सौभाग
हो सका है।

भगवद्वाणी के प्रचार-प्रसार के इस सात्त्विक अनुष्ठान में अपने सहयोगियों के भी हम कृतज्ञ हैं।
स्था. जैन कॉन्फरेंस के तथा इस समिति के अध्यक्ष विवेकमूर्ति श्रावकवर्य सेठ मोहनमलजी सा. चोरडि
श्रीश्वरलाल जी बैताला, श्री मूलचन्द जी सुराणा, श्री दौलतराज जी पारख, श्री गुमानमल जी चो
स्थानीय कोषाध्यक्ष श्री रतनचन्द जी मोदी तथा स्थानीय मंत्री श्रीमान् चांदमल जी विनायकिया, पं. शोभा
भारिल्ल तथा श्रीसुजानमल जी सेठिया आदि का सहयोग विभिन्न रूपों में हमें प्राप्त हो रहा है। इन सब
आभारी हैं।

पुखराज शीशोदिया
कार्यवाहक अध्यक्ष

जतनराज
प्रधानमं

श्री आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्

जैनधर्म, दर्शन व संस्कृति का मूल आधार सर्वज्ञ की वाणी है। सर्वज्ञ अर्थात् आत्मद्रष्टा। सम आत्मदर्शन करने वाले ही विश्व का समग्र दर्शन कर सकते हैं। जो समग्र को जानते हैं, वे ही तत्त्व निरूपण कर सकते हैं। परमहितकर निःश्रेयस का यथार्थ उपदेश कर सकते हैं।

सर्वज्ञों द्वारा कथित तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध 'आगम' सूत्र के नाम से प्रसिद्ध है।

तीर्थंकरों की वाणी मुक्त सुमनों की वृष्टि के समान होती है, महान् प्रज्ञावान् गणधर उसे ग्रथित करके व्यवस्थित 'आगम' का रूप दे देते हैं।

आज जिसे हम 'आगम' नाम से अभिहित करते हैं, प्राचीन समय में वे 'गणिपिटक' क 'गणिपिटक' में समग्र द्वादशांगी का समावेश हो जाता है। पश्चाद्वर्ती काल में इसके अंग, उपांग, अनेक भेद किये गये।

जब लिखने की परम्परा नहीं थी, तब आगमों को स्मृति के आधार पर या गुरु परम्परा से सुर जाता था। भगवान् महावीर के बाद लगभग एक हजार वर्ष तक 'आगम' स्मृतिपरम्परा पर ही चले स्मृति-दुर्बलता, गुरु-परम्परा का विच्छेद तथा अन्य अनेक कारणों से धीरे-धीरे आगम-ज्ञान लुप्त हो महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पद मात्र ही रह गया। तब देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने श्रमणों क बुलाकर स्मृतिदोष से लुप्त होते आगम ज्ञान को—जिनवाणी को सुरक्षित रखने के पवित्र उद्देश्य से लिपि का ऐतिहासिक प्रयास किया और जिनवाणी को पुस्तकारूढ करके आने वाली पीढ़ी पर अवर्णनीय उपका यह जैन धर्म, दर्शन एवं संस्कृति की धारा को प्रवहमान रखने का अद्भुत उपक्रम था। आगमों का सम्पादन वीर निर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् सम्पन्न हुआ।

पुस्तकारूढ होने के बाद जैन आगमों का स्वरूप मूल रूप में तो सुरक्षित हो गया, किन्तु कालदो आक्रमण, आन्तरिक मतभेद, विग्रह, स्मृति-दुर्बलता एवं प्रमाद आदि कारणों से आगमज्ञान की शुद्ध धा बोध की सम्यक् गुरुपरम्परा धीरे-धीरे क्षीण होने से नहीं रुकी। आगमों के अनेक महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ, गूढ अर्थ छिन्न-विच्छिन्न होते चले गए। जो आगम लिखे जाते थे, वे भी पूर्ण शुद्ध नहीं होते थे। उनक अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही रहे। अन्य भी अनेक कारणों से आगमज्ञान की धारा सङ्कुचित होती गयी

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में लोंकाशाह ने एक क्रांतिकारी प्रयत्न किया। आगमों के शुद्ध औ अर्थ-ज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुनः चालू हुआ। किन्तु कुछ काल बाद पुनः व्यवधान आ गए। साम्प्रदायिक द्वेष, सैद्धान्तिक विग्रह तथा लिपिकारों की भाषाविषयक अल्पज्ञता आ उपलब्धि तथा उनके सम्यक् अर्थबोध में बहुत बड़ा विघ्न बन गए।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में जब आगम मुद्रण की परम्परा चली तो पाठकों को कुछ हुई। आगमों की प्राचीन टीकाएँ, चूर्णि व निर्युक्ति जब प्रकाशित हुईं तथा उनके आधार पर आगमों का

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

—मुनि मिश्रीमल 'मधुकर'

[illegible]

[illegible]

नामकरण

[illegible]—

[illegible]

ाय:—

समवायांग में इस आगम के दस अध्ययन और सात वर्ग कहे हैं।[1] नन्दीसूत्र में आठ वर्गों का उल्लेख न्तु दश अध्ययनों का उल्लेख नहीं है।[2] आचार्य अभयदेव ने समवायांग वृत्ति में दोनों आगमों के कथन मंजस्य बिठाने का प्रयास करते हुए लिखा है कि प्रथम वर्ग में दश अध्ययन हैं। इस दृष्टि से समवायांग र दश अध्ययन और अन्य वर्गों की दृष्टि से सात वर्ग कहे हैं। नन्दीसूत्र में अध्ययनों का उल्लेख नहीं है, केवल आठ वर्ग बतलाये हैं।[3] परन्तु इस सामंजस्य का अन्त तक निर्वाह किस प्रकार हो सकता है? ि समवायांग में अन्तकृद्दशा के शिक्षाकाल (उद्देशनकाल) दश कहे गये हैं जबकि नन्दीसूत्र में उनकी संख्या बताई गई है। समवायांग की वृत्ति में आचार्य अभयदेव ने लिखा है कि उद्देशनकालों के अन्तर का अभिप्राय ात नहीं है।[4]

आचार्य जिनदासगणी महत्तर ने नंदीचूर्णि में[5] और आचार्य हरिभद्र ने नंदिवृत्ति में[6] लिखा है कि वर्ग के दश अध्ययन होने से प्रस्तुत आगम का नाम अंतगडदसाओ है। चूर्णि में दशा का अर्थ अवस्था किया है।[7] समवायांग में दश अध्ययनों का निर्देश है किन्तु उनके नाम का निर्देश नहीं है। जैसे नमि, मातंग, न, रामगुप्त, सुदर्शन, जमालि, भगाली, किंकष, चिल्वक्क और फाल अंबडपुत्र।[8]

तत्त्वार्थसूत्र के राजवार्तिक में एवं अंगपण्णत्ती में कुछ पाठभेद के साथ दश नाम प्राप्त होते हैं। जैसे मातंग, सोमिल, रामगुप्त, सुदर्शन, यमलीक, वलीक, कंबल, पाल और अंबष्ठपुत्र।[9] उसमें लिखा है कि आगम में प्रत्येक तीर्थंकरों के समय में होने वाले दश-दश अन्तकृत् केवलियों का वर्णन है।[10]

जयधवला में भी इस बात का समर्थन किया है।[11] नंदीसूत्र में न तो दश अध्ययनों का उल्लेख है और के नामों का ही निर्देश है। समवायांग और तत्त्वार्थवार्तिक में जिन नामों का निर्देश हुआ है वह वर्तमान

दस अज्झयणा सत्त वग्गा। —समवायांग प्रकीर्णक, समवाय सूत्र ९६

अट्ठ वग्गा—नंदीसूत्र ८८.

दस अज्झयण त्ति प्रथमवर्गापेक्षयैव घटन्ते, नन्द्यां तथैव व्याख्यातत्वात् यच्चेह पठ्यते 'सत्त वग्ग' त्ति तत् प्रथमवर्गादन्यवर्गापेक्षया यतोऽष्ट वर्गाः, नन्द्यामपि तथा पठितत्वात् —समवायांगवृत्ति पत्र ११२.

ततो भणितं-अट्ठ उद्देसणकाला इत्यादि, इह च दश उद्देशनकाला अधीयन्ते इति नास्याभिप्रायमवगच्छामः। —समवायांगवृत्ति, पत्र ११२

पढमवग्गे दस अज्झयण त्ति तस्सक्खतो अंतगडदस त्ति—नंदिसूत्र चूर्णिसहित पृ. ६८

प्रथमवर्गे दशाध्ययनानि इति तत्संख्यया अन्तकृद्दशा इति—नंदिसूत्रवृत्तिसहित, पृ. ८३

दसत्ति-अवत्था—नंदीसूत्र, चूर्णिसहित पृ. ६८.

ठाणं, १०/११३.

तत्त्वार्थवार्तिक १/२०, पृ ७३।

(क) ………इत्येते दश वर्धमानतीर्थंकरतीर्थे, एवमृषभादीनां त्रयोविंशतेस्तीर्थेष्वन्येऽन्ये च दश दशानगारा दश दश दारुणानुपसर्गान्निर्जित्य कृत्स्नकर्मक्षयादन्तकृत दश अस्यां वर्ण्यन्ते इति अन्तकृद्दशा।
—तत्त्वार्थवार्तिक १।२०, पृ. ७३.

(ख) अंगपण्णत्ती, ५१.

अंतयडदसा णाम अंग चउव्विहोवसग्गे दारुणे सहिऊण पाडिहेरं लद्धूण णिव्वाणं गदे सुदंसणादि दस-दस साहू तित्थ पडिवण्णेदि। —कसायपाहुड, भा. १, पृ. १३०.

शैली

प्रस्तुत आगम की रचना कथात्मक शैली में की गई है, इस शैली को प्राचीन पारिभाषिक शब्दावली में 'कथानुयोग' कहा जाता है। इस शैली में "तेणं कालेणं तेणं समएणं" इस शब्दावली से कथा का प्रारम्भ किया जाता है। आगमों में ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशांग, अनुत्तरोपपातिक, विपाकसूत्र और अन्तकृद्दशांग सूत्र का इसी शैली में निर्माण किया गया है।

अर्धमागधी भाषा में शब्दों के दो रूप उपलब्ध होते हैं—परिवसति, परिवसइ, रायवण्णतो, रायवण्णओ, एगवीसाते, एगवीसाए। इस आगम में प्रायः स्वरान्तरूप ग्रहण करने की शैली को अपनाया गया है।

आगमों में प्राय. संक्षिप्तीकरण की शैली को अपनाते हुए शब्दान्त में बिन्दुयोजना द्वारा अथवा अंक-योजना द्वारा अवशिष्ट पाठ को ग्रहण करने की प्राचीन शैली प्रचलित है। आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित 'अन्तकृद्दशांग सूत्र' में इसी शैली को अपनाया गया था, किन्तु श्री अमोलक ऋषिजी महाराज स्मारक ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित 'अन्तकृद्दशांग सूत्र' में पूर्णपाठ देने की शैली को स्वीकार किया गया है। इस शैली की वाचना में अत्यन्त सुविधा रहती है। इसी सुविधा को लक्ष्य में रखते हुए मूल पाठ को पूर्णरूपेण व्यक्त करने की शैली हमें भी अपनानी पड़ी है।

इस सूत्र में यथास्थान अनेक तपों का वर्णन प्राप्त होता है, अष्टम वर्ग में विशेष रूप से तपों के स्वरूप एवं पद्धतियों का विस्तृत विवेचन किया गया है। इन तपों के अनेकविध स्थापनायन्त्र प्राप्त होते हैं। हमने उन समस्त स्थापना-यन्त्रों को कलात्मक रूप देकर आकर्षक बनाने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की वर्णनशैली अत्यंत व्यवस्थित है। इसमें प्रत्येक साधक के नगर, उद्यान, चैत्य-व्यन्तरायतन, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलोक एवं परलोक की ऋद्धि, पाणिग्रहण और प्रीतिदान, भोगों का परित्याग, प्रव्रज्या, दीक्षाकाल, श्रुतग्रहण, तपोपधान, संलेखना और अन्त क्रिया का उल्लेख किया गया है।

'अन्तगडदशा' में वर्णित साधक पात्रों के परिचय से प्रकट होता है कि श्रमण भगवान् महावीर के शासन में विभिन्न जाति एवं श्रेणी के व्यक्तियों को साधना में समान अधिकार प्राप्त था। एक ओर जहाँ वैभिवी राजपुत्र-राजरानी और गाथापति साधनापथ में चरण से चरण मिला कर चल रहे थे, दूसरी ओर वहीं कतिपय उपेक्षित वर्गवाले शूद्र जातीय भी समम्मान इस साधनाक्षेत्र में आकर समान रूप से आगे बढ़ रहे थे। वय की दृष्टि से अतिमुक्त जैसे बाल मुनि और गजसुकुमार जैसे राज-प्रासाद के दुलारे गिने जाने वाले भी इस क्षेत्र में उतर कर सिद्धि प्राप्त कर गये।

अन्तगडदशा सूत्र के मनन से ज्ञात होता है कि गौतम आदि, १८ मुनियों के समान १२ भिक्षु प्रतिमा एवं गुणरत्न-संवत्सर तप की साधना से भी साधक कर्म-क्षय कर मुक्ति लेता है। प्राप्त कर अनीकसेनादि मुनि १४ पूर्व के ज्ञान में रमण करते हुए सामान्य बेले २ की तपस्या से कर्म क्षय कर मुक्ति के अधिकारी बन गए। अर्जुनमाली ने उपशम भाव-क्षमा की प्रधानता से केवल छह मास बेले २ की तपस्या कर सिद्धि प्राप्त कर ली। दूसरी ओर अतिमुक्त कुमार ने ज्ञान-पूर्वक गुण-रत्न तप की साधना से सिद्धि मिलाई और गजसुकुमाल ने बिना शास्त्र पढ़े और लम्बे समय तक साधना एवं तपस्या किए बिना ही केवल एक शुद्ध ध्यान के बल से ही सिद्धि प्राप्त करली। इससे प्रकट होता है कि ध्यान भी एक बड़ा तप है। काली आदि रानियों ने संयम लेकर कठोर साधना की और लम्बे समय में सिद्धि मिलाई। इस प्रकार कोई सामान्य तप से, कोई कठोर तप से, कोई क्षमा की प्रधानता से तो कोई अन्य केवल आत्मध्यान की अग्नि में कर्मों को झोंक कर सिद्धि के अधिकारी बन गए।

भगवान् अरिष्टनेमि के शासन में यक्षिणी नाम की साध्वी प्रवर्तिनी हुई और भगवान् महावीर के शासन में आर्या चन्दनबाला प्रवर्तिनी साध्वी थी।

शिक्षाएं :—

इस सूत्र के अध्ययन से मुमुक्षुजनों को ऐसी अनेक अमूल्य शिक्षाओं का लाभ हो सकता है जिनके द्वारा उनका जीवन आदर्श रूप हो जाता है। जैसे—

१. धैर्य और दृढ़ विश्वास गजसुकुमार की तरह होना चाहिए।
२. सहनशक्ति अर्जुन-माली के समान होनी चाहिए।
३. श्रावक लोगों को सुदर्शन श्रमणोपासक का अनुकरण करना चाहिए जिसका आत्मतेज देव भी सहन नहीं कर सका।
४. धर्मविश्वास कृष्ण वासुदेव की भांति होना चाहिए।
५. प्रश्नोत्तर की शैली अतिमुक्त कुमार के समान होनी चाहिए।
६. त्यागवृत्ति कृष्ण वासुदेव की आठ अग्रमहिषियों की भांति होनी चाहिए।
७. तपस्वर्या महाराजा श्रेणिक की दस देवियों की भांति होनी चाहिए जो आठवें वर्ग में सविस्तार वर्णित है। इस प्रकार यह शास्त्र अनेक शिक्षाओं से अलङ्कृत हो रहा है। जो भव्य प्राणी उक्त शिक्षाओं को धारण कर लेता है उसका मनुष्य-जीवन सार्थक और जनता में आदर्श रूप बन जाता है।

उपकार :—

यद्यपि इस शास्त्र के समुचित सम्पादन में मैं असमर्थ थी तथापि पूज्य गुरुदेव अनुयोगप्रवर्तक श्री कन्हैयालालजी (कमलमुनिजी) म. सा. की पावन कृपा से, शास्त्र विशारद माणेक कुंवरजी म. सा. के शुभाशीष से, प. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल की आग्रहपूरित प्रेरणा से, परम पूज्य आगम-प्रभाकर आत्मारामजी म. सा. की श्रुतसहायता से और भगिनी साध्वी बा. ब्र. मुक्तिप्रभाजी म. सा., बा. ब्र. दर्शनप्रभाजी म. सा. और बा. ब्र. अनुपमाजी के परम सहयोग से श्रमणसंघ के युवाचार्य विद्वद्रत्न मुनि श्री मधुकरजी म. सा. द्वारा आयोजित इस पवित्र अनुष्ठान में किंचित् योगदान करने में समर्थ हो गई।

अतः इन सर्व महाविभूतियों और महानुभावों की महती कृपा, भावना प्रेरणा से पावन बनी हुई मैं मेरे और प्रिय पाठकों के संसार का अंत करनेवाली पावनी दशा की अभ्यर्थना के साथ विराम लेती हूँ और प्रमादवश बुद्धिदोष या अज्ञानवश हुई त्रुटियों हेतु श्रुतदेवताओं की और सर्व श्रुतधरों की क्षमा चाहती हूँ।

अर्हद्वत्सला
साध्वी दिव्यप्रभा

१९८०
जैन उपाश्रय
जमनादास मेहता मार्ग, सीलवती
वालकेश्वर-६

प्रस्तावना

अन्तकृद्दशा : एक अध्ययन

अतीत के सुनहरे इतिहास के पृष्ठों का जब हम गहराई से अनुशीलन-परिशीलन करते हैं तो यह स्पष्ट परिज्ञात होता है कि प्रागैतिहासिक-काल से ही भारतीय तत्त्वचिन्तन दो धाराओं में प्रवाहित है, जिसे हम ब्राह्मण संस्कृति और श्रमण संस्कृति के नाम से जानते-पहचानते हैं। दोनों ही संस्कृतियों का उद्‌गमस्थल भारत ही रहा है। यहां की पावन-पुण्य धरा पर दोनों ही संस्कृतियां फलती और फूलती रही हैं। दोनों ही संस्कृतियां साथ में रहीं इसलिये एक संस्कृति की विचारधारा का दूसरी संस्कृति पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है, सहज है। दोनों ही संस्कृतियों की मौलिक विचारधाराओं में अनेक समानताएं होने पर भी दोनों में भिन्नताएं भी हैं। ब्राह्मण संस्कृति के मूलभूत चिन्तन का स्रोत 'वेद' है। जैन परम्परा के चिन्तन का आद्य स्रोत "आगम" है। वेद 'श्रुति' के नाम से विश्रुत है तो आगम "श्रुत" के नाम से। श्रुति और श्रुत शब्द में अर्थ की दृष्टि से अत्यधिक साम्य है। दोनों का सम्बन्ध "श्रवण" से है। जो सुनने में आया वह श्रुत है।[1] और वही भाववाचक श्रवण श्रुति है। केवल शब्द श्रवण करना ही श्रुति और श्रुत का अभीष्ट अर्थ नहीं है। उसका तात्पर्यार्थ है— जो वास्तविक हो, प्रमाणभूत हो, जन-जन के मंगल की उदात्त विचारधारा को लिये हुए हो, जो आप्त पुरुषों व सर्वज्ञ-सर्वदर्शी वीतराग महापुरुषों के द्वारा कथित हो वह आगम है, श्रुत है, श्रुति है। साधारण-व्यक्ति जो राग-द्वेष से संत्रस्त है, उसके वचन श्रुत और श्रुति की कोटि में नहीं आते हैं। आचार्य वादिदेव ने आगम की परिभाषा करते हुए लिखा है—आप्त वचनों से आविर्भूत होने वाला अर्थ-संवेदन ही "आगम" है।[2]

---

१. क. श्रूयते स्मेति श्रुतम्। —तत्त्वार्थराजवार्तिक।
   ख. श्रूयते आत्मना तदिति श्रुत शब्दः। —विशेषावश्यकभाष्य मलधारीयावृत्ति।

२. आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसंवेदनमागमः —प्रमाणनयतत्त्वालोक ४।१—२।

पश्चात् कुछ अपवादों को छोड़कर श्रुत साहित्य में परिवर्तन नहीं हुआ। वर्तमान में जो आगमसाहित्य उप
है, उसके संरक्षण का श्रेय देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण को है। यह साधिकार कहा जा सकता है कि वर्तमा
उपलब्ध आगम-साहित्य की मौलिकता असंदिग्ध है। कुछ स्थलों पर भले ही पाठ प्रक्षिप्त व परिवर्तित हुए
किन्तु उससे आगमों की प्रामाणिकता में कोई अन्तर नहीं आता।

अन्तकृद्दशा यह आठवां अंग सूत्र है। प्रस्तुत अंग में जन्म मरण की परम्परा का अन्त करने
विशिष्ट पवित्र-चारित्रात्माओं का वर्णन है और उसके दश अध्ययन होने से इस का नाम अन्तकृद्दशा है। समवा
सूत्र में प्रस्तुत आगम के दश अध्ययन और सात वर्ग बताये हैं।[8] आचार्य देववाचक ने नन्दीसूत्र में आठ
का उल्लेख किया है पर दश अध्ययनों का नहीं।[9] आचार्य अभयदेव ने समवायांग वृत्ति में दोनों ही उप
आगमों के कथन में सामंजस्य बिठाने का प्रयास करते हुए लिखा है कि प्रथम वर्ग में दश अध्ययन हैं, इस दृष्टि
समवायांग सूत्र में दश अध्ययन और अन्य वर्गों की अपेक्षा से सात वर्ग कहे हैं। नन्दीसूत्रकार ने अध्ययनों
कोई उल्लेख न कर केवल आठ वर्ग बताये हैं।[10] पर प्रश्न यह है कि प्रस्तुत सामंजस्य का निर्वाह अन्त तक
प्रकार हो सकता है? क्योंकि समवायांग में ही अन्तकृद्दशा के शिक्षाकाल (उद्देशनकाल) दश कहे हैं जबकि
सूत्र में उनकी संख्या आठ बताई है। आचार्य अभयदेव ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि हमें उद्देशनकाल
अन्तर का अभिप्राय ज्ञात नहीं है।[11]

आचार्य जिनदासगणी महत्तर ने नन्दी चूर्णि में[12] और आचार्य हरिभद्र ने नन्दीवृत्ति[13] में लि
है कि प्रथम वर्ग के दश अध्ययन होने से इस आगम का नाम 'अन्तगडदसाओ' है। चूर्णिकार ने दशा का
व्यवस्था किया है।[14] यह स्मरण रखना होगा कि समवायांग में दश अध्ययनों का निर्देश तो है पर उन अध्य
के नामों का संकेत नहीं है। स्थानाङ्ग में दश अध्ययनों के नाम इस प्रकार बताये हैं—नमि, मातंग, सोमि
रामगुप्त, सुदर्शन, जमालि, भगाली, किंकष, चिल्वक, और पाल अंबडपुत्र।[15]

आचार्य अकलंक ने राजवार्तिक[16] में और आचार्य शुभचन्द्र ने अंगपण्णत्ति[17] ग्रन्थ में कुछ पा
के साथ दश नाम दिये हैं। वे इस प्रकार हैं— नमि, मातंग, सोमिल, रामगुप्त, सुदर्शन, यमलोक, वलीक, क
पाल और अबष्टपुत्र। इसमें यह भी लिखा है कि प्रस्तुत आगम में हर एक तीर्थंकरों के समय में होने वाले दश
अन्तकृत् केवलियों का वर्णन है। इस कथन का समर्थन जयधवलाकार वीरसेन और जयसेन ने भी किया है

८. समवायांग प्रकीर्णक समवाय ९६.
९. नन्दी सूत्र ८८.
१०. समवायांगवृत्ति पत्र ११२.
११. समवायांगवृत्ति पत्र ११२.
१२. नन्दीसूत्र चूर्णिसहित पत्र ६८.
१३. नन्दी सूत्र वृत्ति सहित पत्र ८३.
१४. नन्दी सूत्र चूर्णिसहित पृ. ६८.
१५ स्थानाङ्ग १०। ११३.
१६. तत्त्वार्थराजवार्तिक १। २० पृ. ७३.
१७ अंगपण्णत्ती ५१.
१८ कषायपाहुड, भाग १, पृ. १३०.

डाक्टर राधाकृष्णन् ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि यजुर्वेद में ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि, इन तीन तीर्थंकरों का उल्लेख पाया जाता है।[४०]

स्कन्दपुराण के प्रभास खण्ड में एक वर्णन है—अपने जन्म के पिछले भाग में वामन ने तप किया। उस तप के प्रभाव से शिव ने वामन को दर्शन दिये। वे शिव, श्यामवर्ण, अचेल तथा पद्मासन से स्थित थे। वामन ने उनका नाम नेमिनाथ रखा। यह नेमिनाथ इस घोर कलिकाल में सब पापों का नाश करने वाले हैं। उनके दर्शन और स्पर्श से करोड़ों यज्ञों का फल प्राप्त होता है।[४१] प्रभासपुराण[४२] में भी अरिष्टनेमि की स्तुति की गई है। महाभारत[४३] के अनुशासन पर्व में 'शूरः शौरिर्जिनेश्वर' पद आया है। विज्ञों ने 'शूरः शौरिर्जिनेश्वर.' मानकर उसका अर्थ अरिष्टनेमि किया है।[४४]

लंकावतार के तृतीय परिवर्तन में तथागत बुद्ध के नामों की सूची दी गई है। उनमें एक नाम "अरिष्टनेमि" है।[४५] सम्भव है अहिंसा के दिव्य आलोक को जगमगाने के कारण अरिष्टनेमि अत्यधिक लोकप्रिय हो गये थे जिससे कारण उनका नाम बुद्ध की नाम-सूची में भी आया है। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. राय चौधरी ने अपने वैष्णव परम्परा के प्राचीन इतिहास में श्रीकृष्ण को अरिष्टनेमि का चचेरा भाई लिखा है। कर्नल टॉड ने[४६] अरिष्टनेमि के सम्बन्ध में लिखा है कि मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल में चार बुद्ध मेधावी महापुरुष हुए हैं, उनमें एक आदिनाथ हैं, दूसरे नेमिनाथ हैं, नेमिनाथ ही स्केन्डीनेविया निवासियों के प्रथम ओडिन तथा चीनियों के प्रथम "फो" देवता था। प्रसिद्ध कोषकार डॉ. नगेन्द्रनाथ वसु, पुरातत्ववेत्ता डाक्टर फुहरर, प्रोफेसर बारनेट, मिस्टर करवा, डाक्टर हरिदत्त, डाक्टर प्राणनाथ विद्यालंकार, प्रभृति अनेक-अनेक विद्वानों का स्पष्ट मन्तव्य है कि भगवान् अरिष्टनेमि एक प्रभावशाली पुरुष थे। उन्हें ऐतिहासिक पुरुष मानने में कोई बाधा नहीं है।

छान्दोग्योपनिषद् में भगवान् अरिष्टनेमि का नाम "घोर आंगिरस ऋषि" आया है, जिन्होंने श्रीकृष्ण को आत्मयज्ञ की शिक्षा प्रदान की थी। धर्मानन्द कौशाम्बी का मानना है कि आंगिरस भगवान् अरिष्टनेमि का ही नाम था।[४७] आंगिरस ऋषि ने श्रीकृष्ण से कहा—श्रीकृष्ण जब मानव का अन्त समय सन्निकट आये, उस समय उसको तीन बातों का स्मरण करना चाहिये—

१. त्वं अक्षतमसि—तू अविनश्वर है।
२. त्वं अच्युतमसि—तू एक रस में रहने वाला है।
३. त्वं प्राणसंशितमसि—तू प्राणियों का जीवनदाता है।[४८]

---

४०. Indian Philosophy, Vol. I. P. 287.
४१. स्कन्दपुराण प्रभास खण्ड.
४२. प्रभास पुराण ४९।५० ।
४३. महाभारत अनुशासन पर्व अ. १४९, श्लो ५०, ८२
४४. मोक्षमार्ग प्रकाश, पण्डित टोडरमल ।
४५. बौद्ध धर्म दर्शन, आचार्य नरेन्द्रदेव, पृ. १६२.
४६. अनल्स आफ दी भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट पत्रिका, जिल्द २३, पृ. १२२ ।
४७. भारतीय संस्कृति और अहिंसा—पृ. ५७ ।
४८. तद्धैतद् घोर आङ्गिरसः, कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचाऽपिपासा एव स बभूव, सोऽन्त वेलायामेतत्त्रय प्रतिपद्येताक्षतमस्यच्युतमसि प्राणसंशितमसीति ।
—छान्दोग्योपनिषद् प्र. ३, खण्ड १८.

पत्नी थी। मुद्गरपाणि यक्ष की वह उपासना करता था। राजगृह नगर की ललिता गोष्ठी के छह सदस्यों के द्वा
बन्धुमती के चरित्र को भ्रष्ट करने से अर्जुन माली के मन में अत्यन्त रोष पैदा हुआ और मुद्गरपाणि यक्ष
सहयोग से उसने उनका वध कर दिया। वह हिंसा का नग्नताण्डव करने लगा। प्रतिदिन सात व्यक्तियों को मारता
भगवान् महावीर के आगमन को श्रवण कर सुदर्शन श्रेष्ठी दर्शनार्थ जाता है। अर्जुन को यक्ष-पाश से मु
करता है और भगवान् के चरणों में पहुंचाता है।

राजगृह के बाहर यक्षाविष्ट अर्जुन माली का आतंक था। क्या मजाल कि कोई नगर से बाहर निकल
की हिम्मत करे! मगर भ० महावीर का पदार्पण होने पर सुदर्शन, माता-पिता के मना करने पर भी रुक
नहीं। वह भगवान् के दर्शनार्थ रवाना होता है। मार्ग में अर्जुन का साक्षात्कार होता है। हिंसा पर अहिंसा
विजय होती है।

इस वर्णन में यह भी प्रतिपादित किया गया है कि नामधारी अनेक भक्त हो सकते हैं किन्तु सच्चे भक
बहुत ही दुर्लभ हैं। जिस समय आकाश में उमड़-घुमड़ कर घटाएं आयें, उन घटाओं को देख कर कोई मोर
कहे तू कुहूक मत, केकारव मत कर! मोर कहेगा, यह कभी सम्भव नहीं है। जो सच्चा भक्त है, वह समय
पर प्राणों की बाजी भी लगा देता है किन्तु पीछे नहीं हटता। वह जानता है, बिना अग्नि-स्नान किये सुवर्ण
निखार नहीं आता! बिना घिसे हीरे में चमक नहीं आती! वैसे ही बिना कष्ट पाये भक्ति के रंग में भी चमक
दमक नहीं आती।

अर्जुन माली श्रमण बनकर उग्र साधना करते हैं। जिस के नाम से एक दिन बड़े-बड़े वीरों के प
थर्राते थे, हृदय धड़कते थे, जिसने पांच माह तेरह दिन में ११४१ मानवों की हत्या की थी, वही व्यक्ति ज
निर्ग्रन्थ साधना को स्वीकार करता है, तो उसका जीवन आमूल-चूल परिवर्तित हो जाता है। लोग उन श्रमण
कटुवचन कहकर तिरस्कार करते हैं। लाठी, पत्थर, ईंट और थप्पड़ों से उन्हें प्रताड़ित करते हैं तथापि उन के म
में आक्रोश पैदा नहीं होता। वह यही चिन्तन करते हैं—

समणं संजयं दन्तं हणेज्जा कोइ कत्थई।
नत्थि जीवस्स नासुत्ति एवं पेहेज्ज संजए।[50]

श्रमण संयत और दान्त होता है, वह इन्द्रियों का दमन करता है। यदि कोई उसे मारता और पीटता
तो भी वह चिन्तन करता है कि यह आत्मा कभी भी नष्ट होने वाला नहीं है, यह अजर अमर है, शरीर क्षणभंगु
है। उसका नाश होता है, तो उसमें मेरा क्या जाता है! इस प्रकार समत्वपूर्वक चिन्तन करते हुए वे भयंक
उपसर्गों को भी शान्त भाव से सहन करते हैं। अर्जुन अपनी क्षमामयी उग्र साधना के द्वारा छह माह में ही मो
प्राप्त कर लेते हैं।

छठे वर्ग में उस बालमुनि का भी वर्णन है जिसने छह वर्ष की लघुवय में प्रव्रज्या ग्रहण की थी।[51]
ऐतिहासिक दृष्टि से महावीर के शासन में सब से लघुवय में प्रव्रज्या ग्रहण करने वाला यही एक मुनि है। अन्य ज

५०. उत्तराध्ययन सूत्र २ । २७

५१. 'कुमारसमणे' त्ति षड्वर्षजातस्य तस्य प्रव्रजितत्वात्, आह च 'छव्वरिसो पव्वइओ निग्गंथं रोइऊण पावयण'
ति, एतदेव चाश्चर्यमिह अन्यथा वर्षाष्टकादारात्र प्रव्रज्या स्यादिति।

—भगवती सटीक भा. १. श. ५, उ. ४, सू. १८८. पत्र २१९-२

खड़े हो जाते हैं। सुख सुविधाओं में पलने वाली सुकुमार रानियां इतना उग्र तपश्चरण करके आत्मा को कुन्‍दन की तरह चमका सकती हैं, यह इन दो वर्गों के अध्ययन से स्पष्ट होता है। इन महारानियों के छुट-पुट जीवन प्रसंग आगमों व आगमों के व्याख्या-साहित्य में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। विस्तारभय से हम उन सभी प्रसंगों को यहां नहीं दे रहे हैं। इन महारानियों ने विभिन्न प्रकार की कठोर तपश्चर्या की जिसका उल्लेख इन वर्गों में किया गया है। अन्त में—सभी संलेखना-सहित आयु पूर्ण कर निर्वाण को प्राप्त करती हैं।

इस प्रकार अन्तकृद्दशांग सूत्र में अनेक प्रकार के साधकों और साधिकाओं की साधना का सजीव वर्णन है। एक ओर गजसुकुमार जैसे तरुणतपस्वी हैं, तो दूसरी ओर अतिमुक्त कुमार जैसे अल्पवयस्क तेजस्वी श्रमण महान हैं। तीसरी ओर वासुदेव श्रीकृष्ण व सम्राट् श्रेणिक की महारानियों की जीवन-गाथाएं तप की उज्ज्वल किरणें विकीर्ण कर रही हैं। यही कारण है कि पर्युषण के पावन पुण्य पर्वों में स्थानकवासी परम्परा के वर्ग इस आगम का वाचन करते हैं। क्योंकि यह आठवां अंग है, आठ वर्गों में विभक्त है। और पर्युषण पर्व के आठ दिन होते हैं। आठकर्मों को आत्यन्तिक रूप से नष्ट करने वाले ९० साधकों का पवित्र चरित्र है। अष्टगुणोपेत सिद्धि को प्रदान करने में समर्थ है।

इस आगम को, पर्युषण के सुनहरे अवसर पर कब से वाचने की परम्परा प्रारम्भ हुई, यह अन्वेषणीय है। सम्भव है वीर लोंकाशाह या उनके पश्चात् प्रारम्भ हुई हो। जिस किसी ने भी यह परम्परा प्रारम्भ करने का साहस किया होगा, वह बहुत ही तेजस्वी व्यक्ति रहा होगा।

अन्तकृद्दशा सूत्र पर संस्कृत में दो वृत्तियां प्राप्त होती हैं। एक आचार्य अभयदेव की और एक आचार्य घासीलाल जी महाराज की। तीन-चार गुजराती अनुवाद प्रकाशित हुए हैं और पांच हिन्दी अनुवाद प्रकट हुए हैं। इस तरह इस आगम के बारह संस्करण प्रकाश में आये हैं।[१७] अंग्रेजी अनुवाद भी मुद्रित हुआ है।

प्रस्तुत संस्करण पूर्व संस्करणों की अपेक्षा अपनी कुछ अलग विशेषताएं लिये हुए है। शुद्ध मूल पाठ, अर्थ है, और यत्र-तत्र विवेचन है, जो कथा में आये हुए गम्भीर भावों को व्यक्त करता है। परिशिष्ट में आगम के रहस्य को व्यक्त करने के लिये टिप्पण आदि अत्यन्त उपयोगी सामग्री भी दी गई है।

इस आगम के सम्पादन का श्रेय है—बहिन साध्वी दिव्यप्रभा जी को जो परमविदुषी साध्वीरत्न उज्ज्वलकुमारी जी की सुशिष्या हैं। विदुषी महासती श्री उज्ज्वल कुमारी जी एक प्रकृष्टप्रतिभासम्पन्न साध्वी थीं। उनके नाम से सम्पूर्ण जैन समाज भली-भांति परिचित है। महासती जी की प्रबल प्रतिभा के सन्दर्शन उनकी सुशिष्याओं में सहज रूप से किये जा सकते हैं। प्रस्तुत आगम में महासती श्रीदिव्यप्रभा जी की प्रतिभा की दिव्य किरणें विकीर्ण हुयी हैं। उनका यह प्रयास प्रशंसनीय है। आशा है वे लेखन के क्षेत्र में आगे बढ़कर सरस्वती के भण्डार में श्रेष्ठतम कृतियां समर्पित करेंगी।

जैन आगम भारतीय साहित्य की अनमोल सम्पदा है, जिस पर जैन शासन का भव्य प्रासाद अवलम्बित है। उसके प्रकाशन सम्पादन के सम्बन्ध में विभिन्न स्थानों से प्रयत्न हुए हैं। पर ऐसे संस्करणों की अपेक्षा चिरकाल से थी जो आगम के मूल हार्द को स्पष्ट कर सकें। आगम के व्याख्या-साहित्य के आलोक में आगम की गुरु ग्रन्थियां को खोल सकें। इसी दृष्टि से श्रमणसंघ के युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी ने इस महान् कार्य को सम्पन्न करने का एक दृढ़ संकल्प किया, जिस की सभी ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। मेरे परम श्रद्धेय स...

१७ देखिए—जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा-ले. देवेन्द्रमुनि पृ. ७१२

विषयानुक्रम

प्रथम वर्ग

सप्तम वर्ग

अष्टम वर्ग

पढमो वग्गो

पढमं अज्झयणं

उत्क्षेप

१—तेणं कालेणं तेणं समएणं चपानामं नयरी। पुण्णभद्दे चेइए-वण्णओ। तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मे समोसरिए। परिसा निग्गया जाव [धम्मो कहिओ। परिसा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं] पडिगया। तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अंतेवासी अज्जजंबू जाव [नामं अणगारे कासवगोत्तेणं सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसहणारायसंघयणे कणगपुलगनिहसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे ओराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्तविउलतेयलेस्से अज्जसुहम्मस्स थेरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं से अज्जजंबू नामं अणगारे जायसड्ढे जायसंसए जायकोउहल्ले, संजायसड्ढे संजायसंसए संजायकोउहल्ले, उप्पन्नसड्ढे, उप्पन्नसंसए, उप्पन्नकोउहल्ले, समुप्पन्नसड्ढे, समुप्पन्नसंसए, समुप्पन्नकोउहल्ले उट्ठाए उट्ठेति। उट्ठाए उट्ठित्ता जेणामेव अज्जसुहम्मे थेरे तेणामेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता अज्जसुहम्मे थेरे तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ। करेत्ता वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता अज्जसुहम्मस्स थेरस्स णच्चासन्ने नातिदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहं पंजलिउडे विणएणं] पज्जुवासमाणे एवं वयासी—

उस काल और उस समय मे चपा नाम की नगरी थी। उसके बाहर पूर्णभद्र नामक यक्ष-मन्दिर था। उस काल और उस समय में आर्य सुधर्मा स्वामी चपा नगरी में पधारे। नगर-निवासी जन [धर्म-देशना श्रवणार्थ नगर से निकले। यावत् आर्य सुधर्मा स्वामी ने धर्म-देशना दी। (धर्म-कथन सुनकर) जनता जिस दिशा से आई थी उस दिशा मे] वापस लौटी। उस काल और उस समय मे आर्य सुधर्मा स्वामी के आर्य जबू [नाम के अनगार (शिष्य) थे। उनका काश्यप गोत्र था। उनका शरीर सात हाथ ऊँचा था। उनका संस्थान समचतुरस्र-समचौरस था। उनका संहनन वज्र-ऋषभ-नाराच था। कसौटी पर खींची हुई सोने की रेखा के समान तथा कमल की केसर के समान वे गौरवर्ण थे। वे उग्र तपस्वी, दीप्त तपस्वी, तप्त तपस्वी, महातपस्वी, उदार, कर्मशत्रुओं के लिए घोर, घोर गुणवाले, घोर तपस्वी, घोर ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले, अतएव शरीर-संस्कार के त्यागी थे। दूर-दूर तक फैलने वाली विपुल तेजोलेश्या को उन्होंने अपने शरीर में संक्षिप्त कर रखी थी। वे—जम्बू स्वामी, आर्य सुधर्मा स्वामी के न बहुत दूर और न बहुत नजदीक, ऊर्ध्वजानु और अधःशिर होकर अर्थात् दोनों घुटनों को खड़े करके एवं सिर को नीचे की तरफ झुकाकर ध्यानरूपी कोष्ठक में प्रविष्ट होकर सयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

तत्पश्चात् आर्य जंबूनामक अनगार को तत्त्व के विषय में श्रद्धा (जिज्ञासा) हुई, सशय हुआ, कुतूहल हुआ, विशेष रूप से श्रद्धा हुई, विशेष रूप से सशय हुआ और [illegible]

बोधक है। यहां पर उस "काल" का यह अर्थ हुआ कि इस अवसर्पिणीके चतुर्थ आरे में इस आगम की वाचना दी गई थी। परन्तु इससे यह स्पष्ट नहीं कि चतुर्थ आरे में किस समय वाचना दी गई थी ? क्योंकि चतुर्थ आरा ४२ हजार वर्ष कम कोटा-कोटी सागरोपम का है। अतः इस बात को "तेण समएण" से पद देकर स्पष्ट किया है। उस समय का यह अर्थ है कि जिस समय आर्य सुधर्मा स्वामी विचरण करते हुए चंपा नगरी में पधारे, उस समय उन्होंने जम्बू स्वामी को प्रस्तुत आगम की वाचना दी। इससे यह ध्वनित होता है कि प्रस्तुत आगम की वाचना भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद दी गई थी। वृत्ति में अभयदेव सूरिजी ने काल से अवसर्पिणी का चतुर्थ विभाग अर्थात् चौथा आरा और 'समएण' का विशेष काल अर्थ किया है।

इसके पश्चात् यह बताया गया है कि उस काल और उस समय में आर्य सुधर्मा स्वामी चंपा नगरी में पधारे और नगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य में ठहरे। उनकी शरीर-संपदा, उनके कुल एवं उनके गुणों का वर्णन प्रस्तुत आगम में नहीं किया गया है, क्योंकि नायाधम्मकहाओ में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। अतः यहां केवल संकेत कर दिया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत आगम के प्रतिपादक भगवान् महावीर के पंचम गणधर एवं प्रथम पट्टधर आर्य सुधर्मा स्वामी थे और उनके शिष्य आर्य जम्बू स्वामी प्रश्न-कर्त्ता थे।

प्रस्तुत विवरण से ऐसा प्रश्न होता है कि आर्य सुधर्मा स्वामी का विवरण प्रस्तुत करनेवाले उत्क्षेप—उपोद्घात के कर्ता कौन हैं ? इसका समाधान यह है कि जैसे सुधर्मा स्वामी ने गौतमादि गणधरों का उल्लेख किया है, उसी तरह आर्य जम्बू स्वामी के बाद होनेवाले प्रभवादि आचार्यों ने इस उत्क्षेप में आर्य सुधर्मा स्वामी का वर्णन किया है। अतः ऐसा ही परिलक्षित होता है कि इस उपोद्घात के कर्त्ता आचार्य प्रभवादि ही हों।

इस प्रकार "तेण समएण" शब्द का उपलक्षण-अर्थ यह होता है कि—चतुर्थ आरक के अनन्तर आर्य सुधर्मा स्वामी चंपा नगरी में पधारे और चंपा नगरी के बाहर पूर्णभद्रनामक चैत्य में ठहरे। उनके आगमन का शुभ-संदेश सुनकर नागरिक उनके दर्शनार्थ आए और धर्मोपदेश सुनकर वापस लौट गये। उस समय उनके शिष्य आर्य जम्बू स्वामी विनय-भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक उनके चरणों में उपस्थित होकर विनम्र शब्दों में बोले। क्या बोले, यह आगे कहा जाएगा।

प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकर्ता ने वर्णन-क्षेत्र एवं वर्णन-कर्ता आदि के नाम का उल्लेख मात्र किया है। वर्णन-स्थान एवं वर्णन-कर्ता के सम्पूर्ण स्वरूप को जानने के लिये अन्य आगमों को देखने का संकेत कर दिया है। अतः चंपा नगरी एवं उसमें रहे हुए पूर्णभद्र चैत्य का वर्णन एवं उसमें पधारे हुए आर्य सुधर्मा स्वामी के जीवन-परिचय से लेकर परिषद् के आवागमन तक का वर्णन औपपातिक आदि आगमों से जानना चाहिए। उस में चंपा नगरी एवं पूर्णभद्र चैत्य का विस्तार से वर्णन किया गया है। ऐसे स्थानों पर इन वर्णित विषयों का सूचक शब्द है—"वण्णओ।"

'वण्णओ' यह पद वर्णक का बोधक है। वर्णन करनेवाला प्रकरण वर्णक शब्द से व्यवहृत किया जाता है। आगे जहां-जहां जिस पद के आगे वर्णक पद का उल्लेख मिले, वहां-वहां पर उस पद से सम्बन्धित पदार्थ का वर्णन करनेवाले पाठ की ओर संकेत रहेगा।

यहां यह प्रश्न हो सकता है कि आगमों में अंग सूत्रों का ही स्थान प्रमुख होने पर भी यहां अंग सूत्रों में वर्णित पाठों के लिए पाठकों को अंगबाह्य आगमों पर क्यों अवलंबित किया जाता है ?

आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—"जम्बू ! श्रमण भगवान् ने अष्टम अन्तकृद्दशांग के आठ व
प्रतिपादन किए हैं।"

विवेचन—आगम-परिपाटी के पर्यवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि सर्व आगम आर्य स्वामी और आर्य सुधर्मा स्वामी के प्रश्नोत्तर रूप है। आर्य जंबू स्वामी प्रश्न करते हैं और आ सुधर्मा स्वामी उनका उत्तर देते हैं। यही प्रश्नोत्तर आज हमारे सामने आगमों के रूप में दिखाई है। इसकी स्पष्टता प्रस्तुत सूत्र में झलकती है। अन्तकृद्दशांग सूत्र का शुभारंभ इस प्रकार के प्रश्नोत्त से ही होता है। इस सूत्र में प्रश्नोत्तर द्वारा आर्य जंबू स्वामी ने अष्टम अन्तकृद्दशांग आगम के श्रव वर्णन की जिज्ञासा प्रस्तुत की है।

वस्तुत: आगमों के तीन प्रकार हैं—(१) आत्मागम, (२) अनन्तरागम औ (३) परंपरागम[1]।

गुरुजनों के उपदेश बिना स्वयमेव आगमों का ज्ञान होना आत्मागम कहलाता है। तीर्थंक परमात्मा के लिये अर्थागम आत्मागम रूप हैं और गणधरों के लिये सूत्रागम आत्मागमरूप है (मूलरूप आगम को सूत्रागम, सूत्र के अर्थ रूप आगम को अर्थागम और सूत्र और अर्थ उभयरूप आग को तदुभयागम कहते हैं)।

स्वयं आत्मागमधारी पुरुष से प्राप्त होने वाला आगमज्ञान अनन्तरागम कहा गया है गणधर भगवान् के लिये अर्थागम अनन्तरागम रूप है। तथा जंबू स्वामी आदि गणधर-शिष्यों लिये सूत्रागम अनन्तरागमरूप है।

आत्मागमधारी महापुरुष से प्राप्त न होकर जो आगम-ज्ञान उनके शिष्य-प्रशिष्य आदि परम्परा से प्राप्त होता है, वह परम्परागम कहा जाता है। जैसे जंबू स्वामी आदि गणधरशिष् के लिये अर्थागम परम्परा रूप है। तथा इन के बाद के सभी साधकों के लिये सूत्र एवं अर्थ दो प्रकार के आगम परम्परागम हैं।

अत: यह स्पष्ट ही है कि प्रस्तुत अन्तकृद्दशांग सूत्र अर्थ की दृष्टि से तीर्थंकर परमात्मा के लि आत्मागम है, गणधरों के लिये अनन्तरागम है और गणधर-शिष्यों के लिये परम्परागम है। इ प्रकार यह आगम सूत्र की दृष्टि से गणधरों के लिये आत्मागम, गणधर-शिष्यों के लिये अनन्तराग और गणधर-प्रशिष्यों के लिये परम्परागम है।

अर्थरूप से आगमों का प्रतिपादन तीर्थंकर परमात्मा करते हैं, गणधर उन्हें सूत्र रूप गूँथते हैं। वस्तुत: गणधर भगवान् तीर्थंकर परमात्मा से प्राप्त किए हुए पदार्थ के प्रचारक स्वयं उसके द्रष्टा या स्रष्टा नहीं हैं।

प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि आर्य सुधर्मा ने जंबू अनगार से कहा—हे जंबू ! भगवा महावीर ने अन्तगड सूत्र के आठ वर्ग प्रतिपादन किये हैं।

इस सूत्र में प्रयुक्त "वग्गा" शब्द वर्ग का बोधक है। वर्ग का अर्थ होता है शास्त्र का ए विभाग, प्रकरण या अध्ययनों का समूह।

आर्य सुधर्मा स्वामी के प्रस्तुत विचारों को जानकर आर्य जंबू स्वामी ने जो निवेदन प्रस्तु किया वह अब तृतीय सूत्र में दर्शाया जाता है—

1. अनुयोगद्वार प्रमाण विषय—सूत्र-१४७

गौतम

५—"एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नामं नयरी होत्था। दुवालसजोयणायामा, नव-जोयण-विच्छिण्णा, धणवइ-मइ-निम्माया, चामीकर-पागारा, नाणामणि-पंचवण्ण-कविसीसगमंडिया, सुरम्मा, अलकापुरी-संकासा, पमुदिय-पक्कीलिया पच्चक्खं देवलोगभूया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

तीसे णं बारवईए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं रेवयए नामं पव्वए होत्था। तत्थ णं रेवयए पव्वए नंदणवणे नामं उज्जाणे होत्था। वण्णओ। सुरप्पिए नामं जक्खायतणे होत्था, पोराणे, से णं एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, असोगवरपायवे।"

(आर्य सुधर्मा स्वामी जंबू अनगार के प्रश्न का उत्तर देते हुए बोले—) "जंबू ! उस काल और उस समय में द्वारका नाम की एक नगरी थी। वह बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी, वैश्रमण देव कुबेर के कौशल से निर्मित, स्वर्ण-प्राकारों (कोटों) से युक्त, पंचवर्ण के मणियों से जटित कंगूरों से सुशोभित थी और कुबेर की नगरी अलकापुरी सदृश प्रतीत होती थी। प्रमोद और क्रीडा का स्थान थी, साक्षात् देवलोक के समान देखने योग्य, चित्त को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय थी, अभिरूप थी, प्रतिरूप थी।

उस द्वारका नगरी के बाहिर ईशान कोण में रैवतक नाम का पर्वत था। उस रैवतक पर्वत पर नन्दनवन नाम का एक उद्यान था। उस उद्यान का वर्णन औपपातिकसूत्र के वन-वर्णन के समान जान लेना चाहिए। वहाँ सुरप्रियनामक यक्ष का एक मंदिर था, वह बहुत प्राचीन था और चारों ओर से अनेकविध वृक्षसमुदाय से युक्त वनखंड से घिरा हुआ था। उस वनखंड के मध्य में एक सुन्दर अशोक वृक्ष था।"

विवेचन—"बारवई"—इस पद का संस्कृतरूप द्वारवती होता है। यह कृष्ण महाराज की नगरी का नाम है। वैदिक परंपरा में इसी को द्वारका कहते हैं। इस प्रकार द्वारवती तथा द्वारका ये दोनों शब्द एक ही नगरी के बोधक हैं।

इस सूत्र के अनुसार द्वारका नगरी "दुवालसजोयणायामा (द्वादशयोजनायामा) अर्थात् बारह योजन लम्बी थी। प्रस्तुत में योजन का माप "आत्मांगुल" से करना है। जिस काल में जो मनुष्य होते हैं उनके अपने अंगुल को आत्मांगुल कहते हैं। ९६ अंगुल का एक धनुष होता है और दो हजार धनुषों का एक कोस, तथा चार कोस का एक योजन होता है। इस तरह द्वारका नगरी की लम्बाई ४८ कोस की थी। ४८ कोस जितने लम्बे विशाल क्षेत्र में द्वारका नगरी को बसाया गया था।

'धणवइ-मइ-निम्माया' अर्थात्—जिस नगरी का निर्माण कुबेर की बुद्धि द्वारा हुआ, उसे धनपतिमति-निर्मिता कहते हैं। प्रश्न होता है कि क्या मर्त्यलोक में कोई देव कुबेरादि नगरी का निर्माण करने आते हैं ?

इसका समाधान एक रहस्य में है—"जब यादव जरासंध प्रतिवासुदेव के आतंक से आतंकित हो गए और शौर्यपुर को छोड़कर समुद्र के समीप सौराष्ट्र में पहुँचे, तब नगरी के योग्य तथा सुरक्षित स्थान देखकर कृष्ण महाराज ने वहाँ अष्टम तप किया, धनपति वैश्रमण का आराधन किया।

गौतम

५—"एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नामं नयरी होत्था। दुवालसजोयणा-यामा, नव-जोयण-वित्थिण्णा, धणवइ-मइ-निम्माया, चामीकर-पागारा, नानामणि-पंचवण्ण-कविसीसग-मंडिया, सुरम्मा, अलकापुरी-संकासा, पमुदिय-पक्कीलिया पच्चक्खं देवलोगभूया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

तीसे णं बारवईए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं रेवयए नामं पव्वए होत्था। तत्थ णं रेवयए पव्वए नंदणवणे नामं उज्जाणे होत्था। वण्णओ। सुरप्पिए नामं जक्खायतणे होत्था, पोराणे, से णं एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, असोगवरपायवे।"

(आर्य सुधर्मा स्वामी जंबू अनगार के प्रश्न का उत्तर देते हुए बोले—) "जंबू ! उस काल और उस समय में द्वारका नाम की एक नगरी थी। वह बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी, वैश्रमण देव कुबेर के कौशल से निर्मित, स्वर्ण-प्राकारों (कोटों) से युक्त, पचवर्ण के मणियों से जटित कंगूरों से सुशोभित थी और कुबेर की नगरी अलकापुरी सदृश प्रतीत होती थी। प्रमोद और क्रीडा का स्थान थी, साक्षात् देवलोक के समान देखने योग्य, चित्त को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय थी, अभिरूप थी, प्रतिरूप थी।

उस द्वारका नगरी के बाहिर ईशान कोण में रैवतक नाम का पर्वत था। उस रैवतक पर्वत पर नन्दनवन नाम का एक उद्यान था। उस उद्यान का वर्णन औपपातिकसूत्र के वन-वर्णन के समान जान लेना चाहिए। वहाँ सुरप्रियनामक यक्ष का एक मंदिर था, वह बहुत प्राचीन था और चारों ओर से अनेकविध वृक्षसमुदाय से युक्त वनखंड से घिरा हुआ था। उस वनखंड के मध्य में एक सुन्दर अशोक वृक्ष था।"

विवेचन—"बारवई"—इस पद का संस्कृतरूप द्वारवती होता है। यह कृष्ण महाराज की नगरी का नाम है। वैदिक परंपरा में इसी को द्वारका कहते हैं। इस प्रकार द्वारवती तथा द्वारका ये दोनों शब्द एक ही नगरी के बोधक हैं।

इस सूत्र के अनुसार द्वारका नगरी "दुवालसजोयणायामा (द्वादशयोजनायामा) अर्थात् बारह योजन लम्बी थी। प्रस्तुत में योजन का माप "आत्मांगुल" से करना है। जिस काल में जो मनुष्य होते हैं उनके अपने अंगुल को आत्मांगुल कहते हैं। ९६ अंगुल का एक धनुष होता है और दो हजार धनुषों का एक कोस, तथा चार कोस का एक योजन होता है। इस तरह द्वारका नगरी की लम्बाई ४८ कोस की थी। ४८ कोस जितने लम्बे विशाल क्षेत्र में द्वारका नगरी को बसाया गया था।

'धणवइ-मइ-निम्माया' अर्थात्—जिस नगरी का निर्माण कुबेर की बुद्धि द्वारा हुआ, उसे धनपतिमति-निर्माता कहते हैं। प्रश्न होता है कि क्या मर्त्यलोक में कोई देव कुबेरादि नगरी का निर्माण करने आते हैं ?

इसका समाधान एक रहस्य में है—"जब यादव जरासंध प्रतिवासुदेव के आतंक से आतंकित हो गए और शौर्यपुर को छोड़कर समुद्र के समीप सौराष्ट्र में पहुँचे, तब नगरी के योग्य तथा सुरक्षित स्थान देखकर कृष्ण महाराज ने वहाँ अष्टम तप किया, धनपति वैश्रमण का आराधन किया।

कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति], सार्थवाह—इन सब पर तथा द्वारका एव आधे भारतवर्ष पर आधिपत्य यावत् [पुरोवर्तित्व (आगेवानी), भर्तृत्त्व (पोषकता), स्वामित्व, महत्तरत्व (बड़प्पन) और आज्ञाकारक सेनापतित्व करते हुए—पालन करते हुए, कथा-नृत्य, गीतिनाट्य, वाद्य, वीणा, करताल, तूर्य, मृदंग की कुशल पुरुषों के द्वारा बजाये जाने से उठनेवाली महाध्वनि के साथ विपुल भोगों को भोगते हुए] विचरते थे।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे द्वारकाधीश कृष्ण महाराज के राज्य-वैभव का वर्णन किया गया है। इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि महाराज कृष्ण की राजधानी में राजयोग्य सभी वस्तुएं उपलब्ध थी और इनका राज्य आर्थिक, सामाजिक, सैनिक सभी दृष्टियों से सम्पन्न था।

'दसण्हं दसाराणं' इन पदों को व्याख्या करते हुए वृत्तिकार अभयदेवसूरि कहते हैं—

'समुद्रविजयोऽक्षोम्यस्तिमित. सागरस्तथा।
हिमवानचलश्चैव, धरण· पूरणस्तथा॥ १॥
अभिचन्द्रश्च नवमो, वसुदेवश्च वीर्यवान्।
वसुदेवानुजे कन्ये, कुन्ती मद्री च विश्रुते॥ २॥
दश च तेऽर्हाश्च-पूज्याः इति दशार्हा.।'

अर्थात्—कृष्ण महाराज के पिता वसुदेव दस भाई थे। (१) समुद्रविजय, (२) अक्षोभ्य, (३) स्तिमित, (४) सागर, (५) हिमवान्, (६) अचल, (७) धरण, (८) पूरण, (९) अभिचन्द्र, (१०) वसुदेव। ये दसों बड़े बली थे। समुद्रविजय इनमे सबसे बड़े थे और वसुदेव सबसे छोटे। इन के कुन्ती और माद्री ये दोनों बहिनें थी।

'पजुण्णपामोक्खाणं अद्‌धुट्‌ठाण कुमारकोडीण'—अर्थात् साढ़े तीन करोड कुमार थे और इन मे प्रद्युम्न प्रमुख थे।

यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि कुमारों की इतनी बड़ी संख्या क्या द्वारका नगरी मे ही विद्यमान थी? या कुछ राजकुमार द्वारका में और कुछ द्वारका से बाहर रहते थे? इसका समाधान यह है कि सूत्रकार ने कुमारों की जो संख्या बतलाई है, वह केवल द्वारकानिवासी राजकुमारों की नही, प्रत्युत यह सभी राजकुमारों की है। महाराज कृष्ण के समस्त राज्य मे इनका निवास था। उस समय कृष्ण महाराज का राज्य वैताढ्य पर्वत तक फैला हुआ था, अत. कुमारों की उक्त सख्या भारत वर्ष के तीनों खंडों में निवास करती थी।

सूत्रकार ने आगे चलकर 'उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं रायसाहस्सीण' ये पद दिये हैं। इनका अर्थ है—सोलह हजार राजा थे, इनके प्रमुख महाराज उग्रसेन थे। इन के राज्य भी तीनों खंडों में थे और तीनों खडों में इनका निवास था।

सूत्रकार ने कुमारों की, राजाओं की तथा अन्य लोगों की संख्या का जो निर्देश किया है इसके पीछे यही भावना है कि कृष्ण महाराज के राज्य में ये सब लोग रहते थे और इन सब पर कृष्ण महाराज राज्य करते थे। जिस प्रकार आजकल जनगणना द्वारा जनता की सख्या का पता लगाया जाता है और देश के निवासियों की जाति, धर्म और भाषा आदि का बोध प्राप्त किया जाता है, ठीक इसी प्रकार उस समय वासुदेव कृष्ण के राज्य में कितने कुमार थे? कितने राजा थे? कितना सैनिक

सुमिणदंसण-कहणा, जम्मं बालत्तणं कलाओ य।
जोव्वण-पाणिग्गहणं, कण्णा वासा य भोगा य।।[1]
नवरं गोयमो[2] अट्ठण्हं रायवरकण्णाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेंति, अट्ठट्ठओ दाओ।

उस द्वारका नगरी में अन्धकवृष्णि नाम का राजा निवास करता था। वह हिमवान्—हिमालय पर्वत की तरह महान् था। (उसकी ऋद्धि-समृद्धि का वर्णन औपपातिक सूत्र में किया गया है।) अन्धकवृष्णि राजा की धारिणी नाम की रानी थी। कभी किसी समय वह धारिणी रानी अन्यत्र वर्णित (पुण्यवान् जन के योग्य) उत्तम शय्या पर शयन कर रही थी, जिसका वर्णन महाबल (के प्रकरण में वर्णित शय्या के) समान समझ लेना चाहिये। तत्पश्चात्—

स्वप्न-दर्शन, पुत्रजन्म, उसकी बाल-लीला, कलाज्ञान, यौवन, पाणिग्रहण, रम्य प्रासाद एवं भोगादि—(यह सब वर्णन भी महाबल जैसा ही समझना)। विशेष यह कि उस बालक का नाम गौतम रखा गया, उसका एक ही दिन में आठ श्रेष्ठ राजकुमारियों के साथ पाणिग्रहण करवाया गया तथा दहेज में आठ-आठ प्रकार की वस्तुएं दी गईं।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में गौतम कुमार के गर्भ में आने से लेकर विवाह तथा विषयभोगों के उपभोग तक का वर्णन किया गया है, अब सूत्रकार अग्रिम सूत्र में परमाराध्य भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में पहुँच कर गौतम कुमार के दीक्षित होने का वर्णन करते हैं—

८—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी आइगरे[3] जाव [संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे] विहरइ, चउव्विहा देवा आगया। कण्हे वि णिग्गए। धम्मं सोच्चा "जं नवरं देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि। देवाणुप्पियाणं [अंतिए मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वयामि] एवं जहा मेहे जाव (तहा गोयमे वि) [सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ। करित्ता जेणामेव समणे भगवं अरिट्ठनेमी तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता समणं भगवं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ। करित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

आलित्ते णं भंते! लोए, पलित्ते णं भंते! लोए, आलित्तपलित्ते णं भंते! लोए जराए मरणेण य। से जहा नामए केई गाहावई आगारंसि झियायमाणंसि जे तत्थ भंडे भवइ अप्पभारे मोल्लगुरुए तं गहाय आयाए एगंतं अवक्कमइ, एस मे नित्थारिए समाणे पच्छा पुरा हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ। एवामेव मम वि एगे आया भंडे इट्ठे कंते पिए मणुन्ने मणामे, एस मे नित्थारिए समाणे संसारवोच्छेयकरे भविस्सइ। तं इच्छामि णं देवाणुप्पियाहिं सयमेव पव्वावियं, सयमेव मुंडावियं, सेहावियं, सिक्खावियं, सयमेव आयार-गोयर-विणय-वेणइय-चरण-करण-जाया-मायावत्तियं धम्ममाइक्खियं।

तए णं समणे भगवं अरिट्ठनेमी सयमेव पव्वावेइ, सयमेव आयार० जाव धम्ममाइक्खइ-एवं देवाणुप्पिया! गंतव्वं चिट्ठियव्वं निसीयव्वं तुयट्टियव्वं भुंजियव्वं भासियव्वं, एवं उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्सिं च णं अट्ठे णो पमाएयव्वं।

---

१. यह गाथा अंगसुत्ताणि में नहीं है।
२. M. C. Modi द्वारा सम्पादित अंतगड में 'गोयमो नामेण' पाठ है।
३. सूत्र नं. २ में प्रस्तुत पाठ पूर्ण किया गया है। यहां विहरइ हेतु अपूर्ण पाठ ब्रॉकेट में पूर्ण किया गया है।

सुमिणदंसण-कहणा, जम्मं बालत्तणं कलाओ य ।
जोव्वण-पाणिग्गहणं, कण्णा पासा य भोगा य ॥[1]

नवरं गोयमो[2] अट्ठण्हं रायवरकण्णाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेंति, अट्ठट्ठओ दाओ ।

उस द्वारका नगरी में अन्धकवृष्णि नाम का राजा निवास करता था। वह हिमवान्—हिमालय पर्वत की तरह महान् था। (उसकी ऋद्धि-समृद्धि का वर्णन औपपातिक सूत्र में किया गया है।) अन्धकवृष्णि राजा की धारिणी नाम की रानी थी। कभी किसी समय वह धारिणी रानी अन्यत्र वर्णित (पुण्यवान् जन के योग्य) उत्तम शय्या पर शयन कर रही थी, जिसका वर्णन महाबल (के प्रकरण में वर्णित शय्या के) समान समझ लेना चाहिये। तत्पश्चात्—

स्वप्न-दर्शन, पुत्रजन्म, उसकी बाल-लीला, कलाज्ञान, यौवन, पाणिग्रहण, रम्य प्रासाद एवं भोगादि—(यह सब वर्णन भी महाबल जैसा ही समझना)। विशेष यह कि उस बालक का नाम गौतम रखा गया, उसका एक ही दिन में आठ श्रेष्ठ राजकुमारियों के साथ पाणिग्रहण करवाया गया तथा दहेज में आठ-आठ प्रकार की वस्तुएं दी गईं।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में गौतम कुमार के गर्भ में आने से लेकर विवाह तथा विषयभोगों के उपभोग तक का वर्णन किया गया है, अब सूत्रकार अग्रिम सूत्र में परमाराध्य भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में पहुँच कर गौतम कुमार के दीक्षित होने का वर्णन करते हैं—

८—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी आइगरे[3] जाव [संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे] विहरइ, चउव्विहा देवा आगया। कण्हे वि णिग्गए। धम्मं सोच्चा "जं नवरं देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि। देवाणुप्पियाणं [अंतिए मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वयामि] एवं जहा मेहे जाव (तहा गोयमे वि) [सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ। करित्ता जेणामेव समणे भगवं अरिट्ठनेमी तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता समणं भगवं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ। करित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

आलित्ते णं भंते! लोए, पलित्ते णं भंते! लोए, आलित्तपलित्ते णं भंते! लोए जराए मरणेण य। से जहा नामए केई गाहावई आगारंसि झियायमाणंसि जे तत्थ भंडे भवइ अप्पभारे मोल्लगुरुए तं गहाय आयाए एगंतं अवक्कमइ, एस मे णित्थारिए समाणे पच्छा पुरा हियाए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ। एवामेव मम वि एगे आया भंडे इट्ठे कंते पिए मणुन्ने मणामे, एस मे णित्थारिए समाणे संसारवोच्छेयकरे भविस्सइ। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिएहिं सयमेव पव्वावियं, सयमेव मुंडावियं, सेहावियं, सिक्खावियं, सयमेव आयार-गोयर-विणय-वेणइय-चरण-करण-जाया-मायावत्तियं धम्ममाइक्खियं।

तए णं समणे भगवं अरिट्ठनेमी सयमेव पव्वावेइ, सयमेव आयार० जाव धम्ममाइक्खइ-एवं देवाणुप्पिया! गंतव्वं चिट्ठियव्वं णिसीयव्वं तुयट्टियव्वं भुंजियव्वं भासियव्वं, एवं उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्सिं च णं अट्ठे णो पमाएयव्वं।

---

१. यह गाथा अंगसुत्ताणि में नहीं है।

२. M. C. Modi द्वारा सम्पादित संस्करण में 'गोयमो नामेणं' पाठ है।

३. सूत्र नं. २ में प्रस्तुत पाठ पूर्ण दिया गया है। यहां विहरइ हेतु अपूर्ण पाठ ब्रैकेट में पूर्ण किया गया है।

, एकावली, भिक्षुप्रतिमा, अर्धमासक्षमण आदि विविध प्रकार के तप से] आत्मा को भावित करते विचरने लगे। अरिहंत भगवान् अरिष्टनेमि ने अब द्वारका नगरी के नन्दनवन से विहार कर और वे अन्य जनपदों में विचरण करने लगे।

तपस्या और शास्त्र-स्वाध्याय में तत्पर अनगार गौतम अवसर पाकर भगवान् अरिष्टनेमि या में उपस्थित हुए। विधिपूर्वक वंदना, नमस्कार करने के अनन्तर उन्होंने भगवान् से निवेदन —

"भगवन्! मेरी इच्छा है यदि आप आज्ञा दें तो मैं मासिकी भिक्षु-प्रतिमा (प्रतिज्ञा विशेष) आराधना करूँ"। भगवान् से आज्ञा पाकर वे साधना में लीन हो गए। जैसे स्कन्धक मुनि ने ना की वैसे ही मुनि गौतमकुमार ने भी बारह भिक्षुप्रतिमाओं का आराधन करके गुणरत्न तप का भी वैसे ही आराधन किया। पूर्ण रूप से स्कन्धक की तरह ही चिंतन किया, भगवान् तथा स्थविर मुनियों के साथ वैसे ही शत्रुंजय पर्वत पर चढ़े। १२ वर्ष की दीक्षा पर्याय पूर्ण एक मास की संलेखना द्वारा यावत् [आत्मा को आराधित किया। अनशन द्वारा साठ भोजनों का त्याग कर, जिस अर्थ-प्रयोजन के लिये नग्नभाव-साधुवृत्ति, मुण्डभाव-द्रव्य से सिर को मुंडित , भाव से परिग्रह का त्याग करना, केश लोच अर्थात् बालों को हाथों से उखाड़ना, ब्रह्मचर्यवास, नक—स्नान न करना, अच्छत्रक—छत्र का प्रयोग न करना, उपानह—जूते का उपयोग न करना, शय्या—भूमि पर शयन करना, फलकशय्या—तख्त पर शयन करना, परघरप्रवेश—दूसरों के में भिक्षार्थ प्रवेश करना, लाभालाभ—किसी समय वस्तु का प्राप्त होना, किसी समय न होना, मान—कहीं मान कहीं अपमान होना, दूसरों द्वारा की गई हीलना—अवहेलना, निंदा, ना—लोगों के सामने जाति आदि का गुप्त रहस्य प्रकट करना, ताडना—मारना, गर्हा, निंदा, —अन्य नाना प्रकार के २२ परीषह इन्द्रियों के दुःखदायक उपसर्ग सहन करना [आदि किया जाता उस प्रयोजन को सिद्ध कर लिया और अन्तिम श्वासों द्वारा] सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, सकल गल्लारों से रहित एवं सब प्रकार के दुःखों से विमुक्त हो गए। श्रमण भगवान् महावीर ने वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में दीक्षा के अनन्तर गौतम अनगार की अध्ययनशीलता, तपोभावना, ... आचरण से लेकर अन्तिमविधि कर सिद्ध पद की उपलब्धि तक का वर्णन प्रस्तुत किया है।

... 'थेरा' अर्थात् स्थविर। स्थविर का अर्थ है—शास्त्र में वर्णन किये
... अर्थ है वृद्ध साधु। स्थानांग सूत्र में इसके तीन
... (२) सूत्र स्थविर—स्थानांग-समवायांग
... दीक्षा-पर्याय वाले साधु।
... चारित्र-सर्व सावद्य योगों से निवृत्ति, (२)
... (३) सामायिक श्रुत, आचारांग आदि, (४)
... लेश्या से उत्पन्न होने वाला परिणाम—अध्यवसाय।
... सूत्र का "प्रथम अध्ययन" यह अर्थ अधिक अभीष्ट है। अतः मुनि
... ११ अंगों का अध्ययन किया। यह प्रश्न होता है कि—ग्यारह

दूसरी बात यह भी हो सकती है कि गणधर महाराज अतिशय (ज्ञान विशेष) के धार
लिये उन्होंने भविष्य मे होने वाले चरितो का भी सकलन कर दिया। इसके अतिरिक्त
रम्परा की अपेक्षा से अतीत काल का निर्देश भी दोषयुक्त नही कहा जा सकता।

'चउत्थ जाव भावेमाणे' मे उपयुक्त चतुर्थ शब्द व्रत—एक उपवास का बोधक है, तथा
यावत् और भावेमाणे का अर्थ है—भावयन्-वासयन्—अर्थात् अपने जीवन मे उसका
हुआ।

'मासिय भिक्खुपडिम' का अर्थ है मासिकी भिक्षुप्रतिमा। प्रतिमा का अर्थ है प्रतिज्ञा।
ज्ञा को भिक्षु-प्रतिमा कहते है। ये प्रतिमाए बारह होती है। उनका विस्तृत विवेचन दशा
न किया गया है।

इस प्रतिमा का धारक साधु एक अन्न की और एक पानी की दत्ति (दाता द्वारा दिए
न और पानी की अखण्डधारा दत्ति कहलाती है।) लेता है। जहा एक व्यक्ति के लिये भ
वहा से भोजन लेता है, गर्भवती या छोटे बच्चे की मां के लिये बनाया गया भोजन वह
। दुग्धपान छुड़वाकर भिक्षा देने वाली स्त्री तथा अपने आसन से उठकर भोजन देने व
गया स्त्री से भोजन नही लेता। जिसके दोनो पैर देहली के भीतर हों या बाहर हों उ
नही लेता। दिन के आदि, मध्य और चरम इन तीन भागों मे से एक भाग मे वह भिक्षा
। परिचित स्थान पर वह एक रात रहता है, अपरिचित स्थान पर एक या दो राते ठ
, वह (१) याचनी-आहार की याचना करना, (२) पृच्छनी-मार्ग पूछना, (३) अनुज्ञाप
दि के लिये आज्ञा लेना, (४) प्रश्नो का उत्तर देना, ये चार भाषाए बोलता है।
आराम गृह—जिसके चारो ओर बाग हो, (२) अधोविकट गृह—चारो ओर से खुला
ढका हो, (३) अधोवृक्ष मूलगृह—वृक्ष का मूल या वहां पर बना स्थान, इन स्थानो पर स्वा
लेकर ठहर सकता है। इन स्थानो मे कोई आग लगा दे तो, यह मुनि जीवन को मु
स्वर स्थान मे बाहर नही निकलता। विहार मे यदि पाव मे काटा लग जाए तो उ
कालना, आंखों मे धूल पड़ जाए तो उसको भी दूर नही करता। जहा सूर्य अस्त हो जा
र जाता है। शरीरशुद्धि को छोड़कर जल का प्रयोग नही करता। विहार के समय य
ोई हिंसक जीव आए तो डरकर पीछे नही हटता। यदि कोई जीव उसे देखकर डरता हो त
धार हो जाता है। शीत-निवारण के लिये गरम स्थानो या वस्त्रो किवा तथारूप वस्तुओं क
ही करता। गर्मी का परिहार करने के लिये शीत स्थान मे नही जाता। इस विधि मे
प्रतिमा का पालन होता है। इसका समय एक मास का है। इस प्रकार साधु के अभिग्रह
ा नाम भिक्षु-प्रतिमा है। पहली मासिकी, दूसरी द्वैमासिकी, तीसरी त्रैमासिकी, चौथी
ाचवी पाचमासिकी छठी षाण्मासिकी और सातवी साप्तमासिकी कहलाती है।
तिमा मे अन्न-पानी की एक दत्ति, दूसरी मे दो, तीसरी मे तीन, चौथी मे चार, पाचवी म
ठी मे छह, सातवी मे सात दत्तिया ली जाती है। आठवी प्रतिमा का समय सात दिन-रात
ा का समय भी सात दिन-रात है। आठवी मे चौविहार उपवास करना होता है। नवमी म
बेले-बेले पारणा करना होता है। समय सात दिवस का है। दसवी का समय भी सात दिन-

३२	१६	१६														२
३०	१५	१५														२
२८	१४	१४														२
२६	१३	१३														२
२४	१२	१२														२
३३	११	११	११													३
३०	१०	१०	१०													३
२७	९	९	९													३
२४	८	८	८													३
२१	७	७	७													३
२४	६	६	६	६												४
२५	५	५	५	५	५											५
२४	४	४	४	४	४	४										६
२४	३	३	३	३	३	३	३	३								८
२०	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२						१०
१५	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१५

संलेहणाए—शब्द का अर्थ होता है—अन्तिम समय में किया जाने वाला शरीर और क[...]
आदि को कृश करने वाला तप-विशेष ।

बीओ वग्गो

त्क्षेप

१—"जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढ
ग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं भगवया महावीरेणं
अज्झयणा पण्णत्ता ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं दोच्चस्स वग
अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता।

संगहणी-गाहा

अक्खोभसागर खलु समुद्दहिमवंतअचल नामे य।
धरणे य पूरणे [illegible] य अभिचंदे चेव अट्ठमए॥

अक्षोभादि-पद

जहा पढमो वग्गो तहा सव्वे अट्ठ अज्झयणा गुणरयणतवोकम्मं। सोलसवासाइं परिया
सेत्तुंजे मासियाए संलेहणाए सिद्धो।

आर्य जंबू ने आर्य सुधर्मा स्वामी से पूछा—हे भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने अंत
दशा के प्रथम वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो द्वितीय वर्ग के कितने अध्ययन फरमाये हैं ?

सुधर्मा स्वामी इसका समाधान करते हुए बोले—हे जंबू ! श्रमण भगवान् महावीर ने अ
अंग अंतगडदशा के द्वितीय वर्ग के आठ अध्ययन फरमाये हैं। उस काल और उस समय में द्वा
नाम की नगरी थी। महाराज वृष्णि राज्य करते थे। रानी का नाम धारिणी था।
आठ पुत्र थे—

(१) अक्षोभकुमार, (२) सागरकुमार, (३) समुद्रकुमार, (४) हैमवन्तकुमार, (५) अ
कुमार, (६) धरणकुमार, (७) पूर्णकुमार, (८) अभिचन्द्रकुमार। जैसे—प्रथम वर्ग में गौतम कु
का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार इनके आठ अध्ययनों का वर्णन भी समझ लेना चाहिए। इ
भी गुणरत्न तप का आराधन किया और १६ वर्ष का संयम पालन करके अन्त में शत्रुंजय पर्वत
एक मास की संलेखना द्वारा सिद्धिपद प्राप्त किया।

तत्पश्चात् अनीयस कुमार को आठ वर्ष से कुछ अधिक उम्र वाला हुआ जानकर
ने उसे कलाचार्य के पास भेजा। तत्पश्चात् कलाचार्य ने अनीयस कुमार को गणित जि
है ऐसी लेख आदि शकुनिरुत (पक्षियों के शब्द) तक की बहत्तर कलाएँ सूत्र से, अर्थ से और
सिद्ध करवाई तथा सिखलाई।

वे कलाएँ इस प्रकार हैं—(१) लेखन, (२) गणित, (३) रूप बदलना, (
(५) गायन, (६) वाद्य बजाना, (७) स्वर जानना, (८) वाद्य सुधारना, (९) समान ता
(१०) जुआ खेलना (११) लोगों के साथ वादविवाद करना (१२) पासों से खेलना (१
खेलना (१४) नगर की रक्षा करना (१५) जल और मिट्टी के संयोग से वस्तु का निम
(१६) धान्य निपजाना (१७) नया पानी उत्पन्न करना, पानी को संस्कार करके शुद्ध
उष्ण करना (१८) नवीन वस्त्र बनाना, रंगना, सीना और पहनना (१९) विलेपन की
पहचानना, तैयार करना, लेपन करना आदि (२०) शय्या बनाना, शयन करने की विधि
आदि (२१) आर्या छंद को पहचानना और बनाना (२२) पहेलियाँ बनाना औ
(२३) मागधिका अर्थात् मगध देश की भाषा में गाथा आदि बनाना (२४) प्राकृत भाषा
आदि बनाना (२५) गीति छंद बनाना (२६) श्लोक (अनुष्टुप छंद) बनाना (२७) सुवर्ण
उसके आभूषण बनाना, पहनना आदि (२८) नई चांदी बनाना, उसके आभूषण बनाना
आदि (२९) चूर्ण—गुलाल अबीर आदि बनाना और उसका उपयोग करना (३०) गहने
पहनना आदि (३१) तरुणी की सेवा करना-प्रसाधन करना (३२) स्त्री के लक्षण
(३३) पुरुष के लक्षण जानना (३४) अश्व के लक्षण जानना (३५) हाथी के लक्षण
(३६) गाय बैल के लक्षण जानना (३७) मुर्गा के लक्षण जानना (३८) छत्र-लक्षण जाना (
लक्षण जाना (४०) खड्ग-लक्षण जानना (४१) मणि के लक्षण जानना (४२) काकणी
लक्षण जानना (४३) वास्तुविद्या—मकान दूकान आदि इमारतों की विद्या (४४) सेना के
प्रमाण आदि जानना (४५) नया नगर बसाने आदि की कला (४६) व्यूह-मोर्चा
(४७) विरोधी के व्यूह के सामने अपनी सेना का मोर्चा रचना (४८) सेनासंचालन
(४९) प्रतिचार—शत्रुसेना के समक्ष अपनी सेना को चलाना (५०) चक्रव्यूह—चाक के आकार
बनाना (५१) गरुड़ के आकार का व्यूह बनाना (५२) शकटव्यूह रचना (५३) सामान्य यु
(५४) विशेष युद्ध करना (५५) अत्यन्त विशेष युद्ध करना (५६) अट्ठि (यष्टि या अस्थि
करना (५७) मुष्टियुद्ध करना (५८) बाहुयुद्ध करना (५९) लतायुद्ध करना (६०) बहुत
और थोड़े को बहुत दिखलाना (६१) खड्ग की मूठ आदि बनाना (६२) धनुष-बाण संबं
होना (६३) चांदी का पाक बनाना (६४) सोने का पाक बनाना (६५) सूत्र का छेदन
(६६) खेत जोतना (६७) कमल के नाल का छेदन करना (६८) पत्र-छेदन करना (६९) कड
आदि का छेदन करना (७०) मृत (मूर्छित) को जीवित करना (७१) जीवित को मृत (
करना और (७२) काक घूक आदि पक्षियों की बोली पहचानना।

तत्पश्चात् वह कलाचार्य अनीयस कुमार को गणित प्रधान, लेखन से लेकर शकुनिरुत
बहत्तर कलाएँ सूत्र (मूल पाठ) से, अर्थ से और प्रयोग से सिद्ध कराता है तथा सिखलाता है
करवा कर और सिखला कर माता-पिता के पास ले जाता है।

तब अनीयस कुमार के माता-पिता ने ...

कौटुम्बिक (साथ रहने वाली), बत्तीस रसोई बनाने वाली, बत्तीस भण्डार की रक्षा करने वाली, बत्तीस तरुणियां, बत्तीस पुष्प धारण करने वाली, बत्तीस बलिकर्म करने वाली, बत्तीस शय्या बिछाने वाली, बत्तीस आभ्यन्तर और बत्तीस बाह्य प्रतिहारियां, बत्तीस माला बनाने वाली और बत्तीस पेषण करने वाली दासियां दीं। इसके अतिरिक्त बहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, वस्त्र तथा विपुल धन, कनक यावत् सारभूत धन दिया, जो सात पीढ़ी तक इच्छापूर्वक देने और भोगने के लिये पर्याप्त था। इस प्रकार अनीयस कुमार ने भी प्रत्येक स्त्री को एक-एक हिरण्य कोटि, एक-एक स्वर्ण कोटि, इत्यादि पूर्वोक्त सभी वस्तुएँ दीं, यावत् एक-एक पेषणकारी दासी तथा बहुत-सा हिरण्य-सुवर्ण आदि विभक्त कर दिया। ऊँचे प्रासादों में अनीयस कुमार बजते हुए मृदंगों के द्वारा पर्याप्त भोगों का उपभोग करता हुआ रहने लगा।

उस काल तथा उस समय श्रीवन नामक उद्यान में भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी पधारे। यथा-विधि अवग्रह की याचना करके संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। जनता उनका धर्मोपदेश सुनने के लिये उद्यान में पहुँची और धर्मोपदेश सुन कर अपने-अपने घर वापस चली गई।

जनसमूह का कोलाहल सुनकर अनीयस कुमार ने भी भगवान् के निकट जाने का संकल्प किया। वे भगवान् की सेवा में पहुँचे। उन्होंने भी भगवान् का प्रवचन सुना। प्रवचन के प्रभाव से उनके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया। अन्त में गौतम कुमार की तरह वे भगवान् के चरणों में दीक्षित हो गये। दीक्षा लेने के अनन्तर उन्होंने सामायिक से लेकर चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। बीस वर्ष दीक्षा का पालन किया। अन्त समय में एक मास की संलेखना करके शत्रुंजय पर्वत पर सिद्ध गति को प्राप्त किया।

सुधर्मा स्वामी कहने लगे—हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अष्टम अंग अन्तगड के तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का अर्थ प्रतिपादन किया था।

२-६ अध्ययन

इसी प्रकार अनन्तसेन से लेकर शत्रुसेन पर्यन्त अध्ययनों का वर्णन भी जान लेना चाहिए। सब का बत्तीस-बत्तीस श्रेष्ठ कन्याओं के साथ विवाह हुआ था और सब को बत्तीस-बत्तीस पूर्वोक्त वस्तुएं दी गईं। बीस वर्ष तक संयम का पालन एवं १४ पूर्वों का अध्ययन किया। अन्त में एक मास की संलेखना द्वारा शत्रुंजय पर्वत पर पांचों ही सिद्ध गति को प्राप्त हुए।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में अनीयस कुमार के शेष जीवन का तथा अनन्तसेन आदि पांच श्रेष्ठि-पुत्रों का वर्णन किया गया है।

'पीइदाण' का अर्थ है—प्रीतिदान, जो हर्ष होने के कारण दिया जाता है। यहां दान का अर्थ है पारितोषिक—प्रेमोपहार। वैसे प्रीतिदान का प्रयोग दहेज अर्थ में विशेष प्रसिद्ध है। वर्तमान में विवाह के अवसर पर कन्यापक्ष की ओर से वर-पक्ष को दिया जाने वाला धन और सम्मान दहेज कहा जाता है, किन्तु प्रस्तुत सूत्र से पता चलता है यह दहेज विवाह के अवसर पर वर के पिता की ओर से वर को दिया जाता था। जो वर द्वारा विवाहित कन्याओं में बांट दिया जाता था।

'नवरं सामाइयमाइयाइं चउद्दस पुव्वाइं'—इस वाक्य में पठित 'नवरं' यह अव्यय पद गौतम कुमार और अनीयस कुमार की अध्ययनगत भिन्नता को प्रकट कर रहा है। 'नवरं' शब्द का अर्थ है

सप्तम अध्ययन

सारणे

४—तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए, जहा पढमे, नवरं-वसुदेवे राया। धारिणी देवी। सीहो सुमिणे। सारणे कुमारे। पण्णासओ दाओ। चउद्दस पुव्वा। वीसं वासा परियाओ। सेसं जहा गोयमस्स जाव[1] सेत्तुंजे सिद्धे।

उस काल तथा उस समय में द्वारका नगरी थी। उसमें वसुदेव राजा थे। उनकी रानी धारिणी थी। उसने गर्भाधान के पश्चात् स्वप्न में सिंह देखा। समय आने पर बालक को जन्म दिया और उसका नाम सारण कुमार रखा गया। उसे विवाह में पचास-पचास वस्तुओं का दहेज मिला। सारण कुमार ने सामायिक से लेकर १४ पूर्वों का अध्ययन किया। बीस वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन किया। शेष सब वृत्तान्त गौतम की तरह है। शत्रुंजय पर्वत पर एक मास की संलेखना करके यावत् सिद्ध हुए।

---

१. प्रस्तुत जाव का पूरक पाठ प्रथम वर्ग के ९ वें सूत्र में आ गया है।

तब (दीक्षित होने के पश्चात्) वे छहों मुनि जिस दिन मुण्डित होकर आगार से अनगा धर्म में प्रव्रजित हुए, उसी दिन अरिहंत अरिष्टनेमि को वंदना नमस्कार कर इस प्रकार बोले—

"हे भगवन् ! हम चाहते हैं कि आपकी आज्ञा पाकर हम जीवन पर्यन्त निरन्तर बेले—बे तप द्वारा आत्मा को भावित (शुद्ध) करते हुए विचरण करें।"

अरिहंत अरिष्टनेमि ने कहा—देवानुप्रियो ! जैसे तुम्हें सुख हो, करो, शुभ कर्म करने विलम्ब नहीं करना चाहिए।

तब भगवान् के ऐसा कहने पर वे छहों मुनि भगवान् अरिष्टनेमि की आज्ञा पाकर जीवन भर के लिये बेले-बेले की तपस्या करते हुए यावत् विचरण करने लगे।

छहों अनगारों का देवकी के घर में प्रवेश

७—तए णं ते छ अणगारा अण्णया कयाई छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेंति, जहा गोयमो जाव [बीयाए पोरिसीए झाणं झियायंति, तइयाए पोरिसीए अतुरियम-चवलमसंभंता मुहपोत्तियं पडिलेहंति, पडिलेहित्ता भायण-वत्थाइं पडिलेहंति, पडिलेहित्ता भायणाइं पमज्जंति, पमज्जित्ता भायणाइं उग्गाहेंति, उग्गाहित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—]

इच्छामो णं भंते ! छट्ठक्खमणस्स पारणए तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं संघाडएहिं बारवईए नयरीए जाव [उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए] अडित्तए।

तए णं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा अरहं अरिट्ठनेमिं वंदति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियाओ सहसंबवणाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता तिहिं संघाडएहिं अतुरियम जाव [चवलमसंभंता जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओरियं सोहेमाणा-सोहेमाणा जेणेव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता बारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं] अडंति।

तदनन्तर उन छहों मुनियों ने अन्यदा किसी समय, बेले की तपस्या के पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया और गौतम स्वामी के समान (दूसरे प्रहर में ध्यानारूढ हुए, तीसरे पहर में कायिक और मानसिक चपलता से रहित हो कर मुखवस्त्रिका, भाजन तथा वस्त्रों की प्रतिलेखना की। तत्पश्चात् वे पात्रों को झोली में रख कर और झोली को ग्रहण कर भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी की सेवा में उपस्थित होते हैं, वन्दना-नमस्कार करते है, तदनन्तर निवेदन करते हैं)—

भगवन् ! हम बेले की तपस्या के पारणे में आपकी आज्ञा लेकर दो-दो के तीन सघाडों से द्वारका नगरी में यावत् [साधुवृत्ति के अनुसार धनी-निर्धन आदि सभी घरों में] भिक्षा हेतु भ्रमण करना चाहते हैं।

तब उन छहों मुनियों ने अरिहंत अरिष्टनेमि की आज्ञा पाकर प्रभु को वंदन नमस्कार किया। वंदन नमस्कार कर वे भगवान् अरिष्टनेमि के पास से सहस्राम्रवन उद्यान से प्रस्थान करते है। फिर वे दो दो के तीन सघाटकों में सहज गति से यावत् [चपलता तथा सभ्रान्ति से रहित, चार

देवकी को पुन आगमन की शंका और समाधान

६ तयाणंतरं च णं तच्चे संघाडए बारवईए नयरीए उच्च-नीय जाव[1] पडिलाभेइ पडिलाभेत्ता एवं वयासी —

किण्णं देवाणुप्पिया! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवईए नयरीए नवजोयणवित्थिण्णाए जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए समणा निग्गंथा उच्चनीय जाव [मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए] अडमाणा भत्तपाणं नो लभंति, जण्णं ताइं चेव कुलाइं भत्तपाणाए भुज्जो-भुज्जो अणुप्पविसंति ?

तए णं ते अणगारा देवइं देविं एवं वयासी—नो खलु देवाणुप्पिए! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवईए नयरीए जाव[2] देवलोगभूयाए समणा निग्गंथा उच्चनीय जाव[3] अडमाणा भत्तपाणं नो लभंति, नो चेव णं ताइं ताइं कुलाइं दोच्चं पि तच्चं पि भत्तपाणाए अणुप्पविसंति।

एवं खलु देवाणुप्पिए! अम्हे भद्दिलपुरे नयरे नागस्स गाहावइस्स पुत्ता सुलसाए भारियाए अत्तया छ भायरो सहोदरा सरिसया जाव[4] नल-कुब्बरसमाणा अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा संसारभउव्विग्गा भीया जम्ममरणाणं मुंडा जाव[5] पव्वइया। तए णं अम्हे जं चेव दिवसं पव्वइया तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदामो नमंसामो, इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हामो-इच्छामो णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जाव[6] अहासुहं देवाणुप्पिया।

तए णं अम्हे अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं जाव[7] विहरामो। तं अम्हे अज्ज छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए जाव [सज्झायं करेत्ता, बीयाए पोरिसीए झाणं झियाइत्ता तइयाए पोरिसीए अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं संघाडएहिं बारवईए नयरीए उच्चनीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए] अडमाणा तव गेहं अणुप्पविट्ठा। तं नो खलु देवाणुप्पिए! ते चेव णं अम्हे, अम्हे णं अण्णे। देवइं देविं एवं वदंति, वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

इसके बाद मुनियों का तीसरा सघाड़ा आया यावत् उसे भी देवकी देवी प्रतिलाभ देती है। उनको प्रतिलाभ देकर वह इस प्रकार बोली—"देवानुप्रियो! क्या कृष्ण वासुदेव की इस बारह योजन लम्बी, नव योजन चौड़ी प्रत्यक्ष स्वर्गपुरी के समान द्वारका नगरी में श्रमण निर्ग्रंथों को उच्च—नीच एवं मध्यम कुलों के गृह-समुदायों में, भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए आहार-पानी प्राप्त नहीं होता? जिससे उन्हें आहार-पानी के लिये जिन कुलों में पहले आ चुके हैं, उन्हीं कुलों में पुनः आना पडता है?"

देवकी द्वारा इस प्रकार कहने पर वे मुनि देवकी देवी से इस प्रकार बोले—"देवानुप्रिये! ऐसी बात तो नहीं है कि कृष्ण वासुदेव की यावत् प्रत्यक्ष स्वर्ग के समान, इस द्वारका नगरी में

१. वर्ग—३ का सूत्र—७.
२. वर्ग—३ का सूत्र—६.
३. वर्ग—३ का सूत्र—७.
४. वर्ग—३ का सूत्र—६.
५. वर्ग—३ का सूत्र—६.
६. वर्ग—३ का सूत्र—६.
७. वर्ग—३ का सूत्र—६.

लहुकरणप्पवर जाव [खुर-खलिय-सम-खुर-वालिहाण समलिहियसिंगएहिं, जंबूणयामयकलावजुत्त-पइविसिट्ठेहिं, रययामयघंटा-सुत्तरज्जुग-वरकंचणखइयनत्थापग्गहोग्गहियएहिं, नीलुप्पलकयामेलएहिं, पवरगोण-जुवाणएहिं नाणामणि-रयण-घंटियाजाल-परिगयं, सुजायजुगजोत्तरज्जुयजुग-पसत्थसुविरचियनिम्मियं, पवरलक्खणोववेयं धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुंबिय-पुरिसा एवं वुत्ता समाणा हट्ठ जाव हियया, करयल जाव '' तहत्ति आणाए विणएणं वयणं जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव लहुकरणजुत्त जाव धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव] उवट्ठवेंति। जहा देवाणंदा जाव [तए णं सा देवई देवी अंतो मज्जणघरंसि ण्हाया, कयबलिकम्मा, कयकोउय-मंगलपायच्छित्ता, किंच वरपायपत्तनेउर-मणिमेहला-हार-रइय उचियकडग-खुड्डाग-एगावली-कंठसुत्त-उरत्थगेवेज्ज-सोणिसुत्तग-नाणामणि-रयण-भूसणविराइयंगी, चीणंसुयवत्थपवरपरि-हिया, दुगुल्लसुकुमालउत्तरिज्जा, सव्वोउयसुरभिकुसुमवरियसिरया, वरचंदणवंदिया, वराभरण-भूसियंगी, कालागरुधूवधूविया, सिरिसमाणवेसा, जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा, बहूहिं खुज्जाहिं, चिलाइयाहिं, नाणादेस-विदेसपरिमंडियाहिं, सदेसनेवत्थगहियवेसाहिं, इंगिय-चिंतिय-पत्थिय-वियाणि-याहिं, कुसलाहिं, विणीयाहिं, चेडियाचक्कवालवरिसधर-थेरकंचुइज्ज-महत्तरगवंदपरिक्खित्ता अंतेउराओ णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा।

तए णं सा देवई देवी धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता बहूहिं खुज्जाहिं जाव महत्तरगवंदपरिक्खित्ता भगवं अरिट्ठनेमिं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ, तं जहा—सचित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए, अचित्ताणं दव्वाणं अविमोयणयाए, विणयोणयाए गायलट्ठीए, चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेणं, मणस्स एगत्तीभावकरणेणं; जेणेव भगवं अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ; उवागच्छित्ता भगवं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता ''' सुस्सूसमाणी, णमंसमाणी, अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा जाव] पज्जुवासइ।

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी देवइं देविं एवं वयासी—'से नूणं तव देवई! इमे छ अणगारे पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे—एवं खलु अहं पोलासपुरे नयरे अइमुत्तेणं जाव[1] तं णिग्गच्छसि, णिग्गच्छित्ता जेणेव मम अंतियं तेणेव हव्वमागया, से नूणं देवई! अट्ठे समट्ठे?'

'हंता अत्थि।'

इस प्रकार की बात कहकर उन श्रमणों के लौट जाने के पश्चात् देवकी देवी को इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत और संकल्पित विचार उत्पन्न हुआ कि "पोलासपुर नगर में अतिमुक्त कुमार नामक श्रमण ने मुझे बचपन में इस प्रकार कहा था—हे देवानुप्रिये देवकी! तुम आठ पुत्रों को जन्म दोगी, जो परस्पर एक दूसरे से पूर्णत: समान [आकार, त्वचा और अवस्था वाले, नील कमल, महिष के शृंग के अन्तवर्ती भाग, गुलिका-रंग विशेष और अलसी के समान वर्ण वाले, श्रीवत्स से अंकित वक्षवाले, कुसुम के समान कोमल और कुंडल के समान घुंघराले बालों वाले] नलकूबर के समान प्रतीत होंगे। भरतक्षेत्र में दूसरी कोई माता वैसे पुत्रों को जन्म नहीं देगी। पर वह कथन मिथ्या निकला, क्योंकि प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है कि अन्य माताओं

१. प्रस्तुत सूत्र में ऊपर देखिए।

का निन्दू होना, उसका हरिणेगमेषी देव की आराधना करना, देव का प्रसन्न होकर देवकी देवी के पुत्रों को सुलसा के पास पहुंचाना तथा सुलसा के मृतपुत्रों को देवकी देवी के पास पहुंचाना आदि जो कथन किया उसी का प्रस्तुत सूत्र में वर्णन दिया गया है।

'नेमित्तिएण' शब्द का अर्थ होता है नैमित्तिक। भविष्य को बात बताने वाले ज्योतिषी को नैमित्तिक कहा जाता है।

'णिंदू'—शब्द का अर्थ है—मृत-प्रसविनी। जिसके बच्चे मृत पैदा हों, उसे निन्दू कहते हैं। मृत बालक दो तरह के होते हैं—एक तो गर्भ में ही मरे हुए पैदा होने वाले, दूसरे पैदा होने के बाद मर जाने वाले। प्रस्तुत प्रकरण में निन्दू से प्रथम अर्थ का ग्रहण ही अभीष्ट प्रतीत होता है।

हरिणेगमेषी—शब्द का अर्थ करते हुए कल्पसूत्र (प्रदीपिका टीका के गर्भ परिवर्तन-प्रकरण) में लिखा है—'हरे इन्द्रस्य नैगमम् आदेशमिच्छतीति हरिनैगमेषी, केचित् हरेरिन्द्रस्य संबधी नैगमेषी, नाम देव इति'—अर्थात् हरिनैगमेषी शब्द के दो अर्थ हैं—१. हरि-इन्द्र के नैगम—आदेश को इच्छा करने वाला देव तथा २. हरि-इन्द्र का नैगमेषी अर्थात् संबधी एक देव। हरिनैगमेषी सौधर्म देवलोक के स्वामी महाराज शक्रेन्द्र का सेनापति देव है। इन्द्र की आज्ञा मिलने पर भगवान् महावीर के गर्भ का परिवर्तन इसी देव ने किया था।

'उल्ल-पड-साडया' का अर्थ है—जिसने आर्द्र (भीगा हुआ) पट और शाटिका धारण कर रखी है। पट ऊपर ओढने के वस्त्र का नाम है। शाटिका शब्द से नीचे पहनने की धोती या साड़ी का बोध होता है।

'आहारेइ वा, नीहारेइ वा, वरइ वा' का अर्थ है—आहार करती थी—भोजन खाती थी। निहारेइ अर्थात् शौचादि क्रियाओं से निवृत्त होती थी। वरइ-शब्द वृ धातु से बनता है जिसका अर्थ है—विचार करना, चुनना, सगाई करना, याचना करना, आच्छादन करना, सेवा करना। प्रस्तुत में वृ धातु विचार करने के अर्थ में प्रयुक्त हुई प्रतीत होती है। तब 'वरइ' का अर्थ होगा विचार करती थी, अन्य कार्यों के सम्बन्ध में चिन्तन करती थी।

"भत्ति-बहुमाण-सुस्सूसाए" का अर्थ है—भक्ति-बहुमान तथा शुश्रूषा के द्वारा। भक्ति शब्द अनुराग, बहुमान शब्द अत्यधिक सत्कार तथा शुश्रूषा शब्द सेवा का परिचायक है। इन पदों द्वारा सूत्रकार ने हरिणेगमेषी देव को आराधित—सिद्ध या प्रसन्न करने के तीन साधनों का निर्देश किया है। देव को सिद्ध करने के लिये उक्त तीन बातों की अपेक्षा हुआ करती है। देव को सिद्ध करने के लिये सर्वप्रथम साधक के हृदय में देव के प्रति अनुराग होना चाहिए, तदनन्तर साधक के हृदय में देव के लिये अत्यधिक सत्कार-सम्मान की भावना होनी चाहिये। देव को सिद्ध करने के लिये तीसरा साधन देव की सेवा है।

सुलसा ने हरिणेगमेषी देव की आराधना की, उसकी पूजा की, परिणाम स्वरूप उसने अपना अभीष्ट कार्य सिद्ध कर लिया। इससे भलीभांति सिद्ध हो जाता है कि देवता के प्रति की जाने वाली आराधना साधक की कामना पूर्ण करने में सहायक बन सकती है। देव अपने भक्त की रक्षा करने तथा उस पर अनुग्रह करने में सक्षम होता है।

लोग पुत्रादि को उपलब्ध करने के लिये देव-पूजन करते हैं और पूर्वोपार्जित किसी पुण्य कर्म

विवेचन—भगवान् अरिष्टनेमि से छहों मुनियों का वृत्तान्त सुनने पर "ये छहों मेरे ही पुत्र हैं" इस प्रकार की प्रतीति हो जाने पर वह देवकी देवी छहों मुनियों के दर्शन करती है और पुनः पुनः उन्हें देखकर हर्षित होती है, ऐसी स्थिति में उसका छिपा हुआ वात्सल्य उजागर हुआ, और स्तन-दुग्ध द्वारा प्रकट हो गया। तदनन्तर अपनी स्थिति में समाहित वह अपने भवन में वापस लौटी और विशेष विचारधारा में डूब गई। अग्रिम सूत्र में सूत्रकार उसकी विचारधारा और परिणामधाराओं का दिग्दर्शन कराते हैं।

देवकी की पुत्राभिलाषा

१३—तए णं तीसे देवईए देवीए अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे—एवं खलु अहं सरिसए जाव नलकुब्बर-समाणे सत्त पुत्ते पयाया, नो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणए समणुब्भूए। एस वि य णं कण्हे वासुदेवे छण्हं-छण्हं मासाणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छइ। तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, पुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ, जासिं मण्णे णियग-कुच्छि-संभूयाइं थणदुद्ध-लुद्धयाइं महुर-समुल्लावयाइं मम्मण-पजंपियाइं थण-मूला कक्खदेसभागं अभिसरमाणाइं मुद्धयाइं पुणो य कोमल-कमलोवमेहिं गिण्हिऊण उच्छंगे णिवेसियाइं देंति समुल्लावए सुमहुरे पुणो-पुणो मंजुलप्पभणिए। अहं णं अधण्णा अपुण्णा अकयपुण्णा अकयलक्खणा एत्तो एक्कतरमवि ण पत्ता, ओहय जाव [मणसंकप्पा करयलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया] झियायइ।

उस समय देवकी देवी को इस प्रकार का विचार, चिन्तन और अभिलाषापूर्ण मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ कि अहो ! मैंने पूर्णतः समान आकृति वाले यावत् नलकूबर के समान सात पुत्रों को जन्म दिया पर मैंने एक की भी बाल्यक्रीडा का आनन्दानुभव नहीं किया। यह कृष्ण वासुदेव भी छह-छह मास के अनन्तर चरण-वन्दन के लिये मेरे पास आता है, अतः मैं मानती हूँ कि वे माताएं धन्य हैं, जिनकी अपनी कुक्षि से उत्पन्न हुए, स्तन-पान के लोभी बालक, मधुर आलाप करते हुए, तुतलाती बोली से मम्मन बोलते हुए जिनके स्तनमूल कक्षा-भाग में अभिसरण करते हैं, एवं फिर उन मुग्ध बालकों को जो माताएं कमल के समान अपने कोमल हाथों द्वारा पकड़ कर गोद में बिठाती हैं और अपने बालकों से मधुर-मंजुल शब्दों में बार बार बातें करती हैं। मैं निश्चितरूपेण अधन्य और पुण्यहीन हूँ क्योंकि मैंने इनमें से एक पुत्र की भी बालक्रीडा नहीं देखी। इस प्रकार देवकी खिन्न मन से हथेली पर मुख रखकर (शोक-मुद्रा में) आर्तध्यान करने लगी।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में सात-सात पुत्रों की माता बनने पर भी उनकी बाल्यक्रीडा आदि से वंचित देवकी देवी की खिन्न अवस्था-विशेष में उठने वाले संकल्प-विकल्पों का हृदय-द्रावक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

कृष्ण द्वारा चिन्ता-निवारण का उपाय

१४—इमं च णं कण्हे वासुदेवे ण्हाए जाव [कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकार] विभूसिए देवईए देवीए पायवंदए हव्वमागच्छइ। तए णं से कण्हे वासुदेवे देवइं देविं पासइ, पासित्ता देवईए देवीए पायग्गहणं करेइ, करित्ता देवइं देविं एवं वयासी—

अण्णया णं अम्मो ! तुब्भे ममं पासित्ता हट्ठतुट्ठा जाव [चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोम-

जइणाए छेयाए दिव्वाए देवगतीए जेणामेव बारवईए नयरे पोसहसालाए कण्हे वासुदेवे तेण उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अंतरिक्खपडिवन्ने दसद्धवन्नाइं सखिंखिणियाइं पवरवत्थाइं परिहिए वासुदेवं एवं वयासी—

"अहं णं देवाणुप्पिया ! हरिणेगमेसी देवे महिड्ढिए, जं णं तुमं पोसहसालाए अट्ठम पगिण्हित्ता णं ममं मणसि करेमाणे चिट्ठसि, तं एस णं देवाणुप्पिया ! अहं इहं हव्वमागए । संदिस णं देवाणुप्पिया ! किं करेमि ? किं दलामि ? किं पयच्छामि ? किं वा ते हिय-इच्छियं ।"

तए णं से कण्हे वासुदेवे तं हरिणेगमेसिं देवं अंतलिक्खपडिवन्नं पासइ, पासित्ता हट्ठतु पोसहं पारेइ, पारित्ता करयलपरिग्गहियं] अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सहोयरं कणीयसं भाउयं विदिण्णं ।

उसी समय वहां श्रीकृष्ण वासुदेव स्नान कर, बलिकर्म कर, कौतुक-मंगल और प्रायश्चि कर, वस्त्रालंकारों से विभूषित होकर देवकी माता के चरण-वंदन के लिये शीघ्रतापूर्वक आये वे कृष्ण वासुदेव देवकी माता के दर्शन करते हैं, दर्शन कर देवकी के चरणों में वंदन करते है चरणवन्दन कर देवकी देवी से इस प्रकार पूछने लगे—

"हे माता ! पहले तो मैं जब-जब आपके चरण-वन्दन के लिये आता था, तब-तब आ मुझे देखते ही हृष्ट तुष्ट यावत् आनंदित हो जाती थी, पर माँ ! आज आप उदास, चिन्तित याव आर्तध्यान में निमग्न-सी क्यों दिख रही हो ?"

कृष्ण द्वारा इस प्रकार का प्रश्न किये जाने पर देवकी देवी कृष्ण वासुदेव से इस प्रका कहने लगीं—हे पुत्र ! वस्तुत: बात यह है कि मैंने समान आकृति यावत् समान रूप वाले सात पुत्र को जन्म दिया । पर मैंने उनमें से किसी एक के भी बाल्यकाल अथवा बाल-लीला का सुख नहं भोगा । पुत्र ! तुम भी छह छह महीनों के अन्तर से मेरे पास चरण-वंदन के लिये आते हो । अत मैं ऐसा सोच रही हूं कि वे माताएं धन्य है, पुण्यशालिनी हैं जो अपनी सन्तान को स्तनपान करात है, यावत् उनके साथ मधुर आलाप-संलाप करती हैं, और उनकी बालक्रीड़ा के आनन्द का अनुभ करती हैं । मैं अधन्य हूं अकृत-पुण्य हूं । यही सब सोचती हुई मैं उदासीन होकर इस प्रकार क आर्तध्यान कर रही हूं ।

माता की यह बात सुनकर श्रीकृष्ण वासुदेव देवकी महारानी से इस प्रकार बोले— "माताजी ! आप उदास अथवा चिन्तित होकर आर्तध्यान मत करो । मैं ऐसा प्रयत्न करूंगा जिससे मेरा एक सहोदर छोटा भाई उत्पन्न हो ।" इस प्रकार कह कर श्रीकृष्ण ने देवकी माता को इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ वचनों द्वारा धैर्य बंधाया, आश्वस्त किया । इस प्रकार अपनी माता को आश्वस्त कर श्रीकृष्ण अपनी माता के प्रासाद से निकले, निकलकर जहां पौषधशाला थी वहां आये । आकर जिस प्रकार अभयकुमार ने अष्टमभक्त तप (तेला) स्वीकार करके अपने मित्र देव की आराधना की थी, उसी प्रकार श्रीकृष्ण वासुदेव ने भी की । विशेषता यह कि इन्होंने हरिणैगमेषी देव की आराधना की । पौषधशाला में अष्टम भक्त तप ग्रहण किया, ग्रहण करके पौषधशाला में पौषध ग्रहण कर, ब्रह्मचर्य अंगीकार करके, मणि-सुवर्ण आदि के अलंकारों का त्याग करके, माला, वर्णक और विलेपन का त्याग करके, शस्त्र-मूसल आदि अर्थात् समस्त आरम्भ-समारम्भ को छोड़कर

तुमं देवाणुप्पिए ! णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणराइंदियाणं विइक्कंताणं अम्हं कुलकेउं, कुलदीवं, कुलपव्वयं, कुलवडेंसयं, कुलतिलगं, कुलकित्तिकरं, कुलणंदिकरं, कुलजसकरं, कुलाधारं, कुलपायवं, कुलविवद्धणकरं, सुकुमालपाणि-पायं, अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरं, जाव ससिसोमाकारं, कंतं, पियदंसणं, सुरूवं, देवकुमारसमप्पभं दारगं पयाहिसि ।

से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते सूरे वीरे विक्कंते विच्छिण्ण-विउल-बल-वाहणे रज्जवई राया भविस्सइ । तं उराले णं तुमे जाव सुमिणे दिट्ठे, आरोग्ग-तुट्ठि, जाव मंगलकारए णं तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे त्ति कट्टु भुज्जो भुज्जो अणुवूहेइ ।

देवई देवी वसुदेवस्स रण्णो अंतियं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० करयल० जाव एवं वयासी—"एवमेयं देवाणुप्पिया ! तहमेयं देवाणुप्पिया ! अवितहमेयं देवाणुप्पिया ! असंदिद्धमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! से जहेयं तुब्भे वयह" त्ति कट्टु तं सुविणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता वसुदेवेणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी णाणामणि-रयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अतुरियम-चवल जाव गईए जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता सयणिज्जंसि णिसीयइ, णिसीइत्ता एवं वयासी—'मा मे से उत्तमे पहाणे मंगल्ले सुविणे अण्णेहिं पावसुमिणेहिं पडिहम्मिस्सइ' त्ति कट्टु देव-गुरुजणसंबद्धाहिं पसत्थाहिं मंगल्लाहिं धम्मियाहिं कहाहिं सुविणजागरियं पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ ।

तए णं वसुदेवे राया पच्चूसकालसमयंसि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव [illegible]
सद्दावेह ।' [illegible]
पडिणिक्खमि [illegible]
तेणेव उवागच्छित्ता ते सुविणलक्खणपाढए सद्दावेंति । तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा वसुदेवस्स रण्णो कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठ० ण्हाया कय० जाव सरीरा सिद्धत्थग-हरियालिय-कयमंगलमुद्धाणा सएहिं सएहिं गेहेहिंतो णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता जेणेव कण्हस्स रण्णो भवणवरवडेंसए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल वसुदेवं जएणं विजएणं वद्धावेंति । तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा वसुदेवेणं रण्णा वंदिय-पूइअ-सक्कारिअ-सम्माणिआ समाणा पत्तेयं पत्तेयं पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति । तए णं से वसुदेवे राया देवइं देविं जवणियंतरियं ठावेइ, ठावेत्ता पुप्फ-फल पडिपुण्णहत्थे परेणं विणएणं ते सुविणलक्खणपाढए एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! देवई देवी अज्ज तंसि तारिसगंसि वासघरंसि जाव सीहं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धा, तण्णं देवाणुप्पिया ! एयस्स ओरालस्स जाव के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ?

तए णं सुविणलक्खणपाढगा वसुदेवस्स रण्णो अंतियं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० तं सुविणं ओगिण्हंति, ओगिण्हित्ता ईहं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता तस्स सुविणस्स अत्थोग्गहणं करेंति, तस्स० अण्णमण्णेणं सद्धिं संचालेंति, संचालित्ता तस्स सुविणस्स लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अभिगयट्ठा वसुदेवस्स रण्णो पुरओ सुविणसत्थाइं उच्चारेमाणा उच्चारेमाणा एवं वयासि—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं सुविणसत्थंसि बायालीसं सुविणा, तीसं महासुविणा, बावत्तरिं सव्वसुविणा दिट्ठा । तत्थ णं देवाणुप्पिया ! तित्थयरमायरो वा चक्कवट्टिमायरो वा तित्थयरंसि वा चक्कवट्टिंसि

तए ण से वसुदेवे राया अट्ठारससेणीप्पसेणीओ सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी —"गच्छ णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! बारवईए नयरीए अब्भितरबाहिरिए उस्सुक्क उक्करं अभडप्पवेसं अदंडिम कुडंडिम अधरिम अधारणिज्ज अणुद्धयमुइंगं अमिलायमल्लदामं गणियावरणाडइज्जकलिय अणेगतालायराणुचरितं पमुइयपक्कीलियाभिरामं जहारिहं ठिइवडियं दसदिवसियं करेह, करित्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह ।

ते वि करेन्ति, करित्ता तहेव पच्चप्पिणंति ।

तए णं से वसुदेवे राया बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने सइएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य जाएहि दाएहि भोगेहि दलयमाणे दलयमाणे पडिच्छेमाणे पडिच्छेमाणे एवं च णं विहरइ ।

तए णं तस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे जातकम्मं करेन्ति, करित्ता बितियदिवसे जागरियं करेन्ति, करित्ता ततिय दिवसे चंदसूरदंसणियं करेन्ति, करित्ता एवामेव निव्वत्ते असुइजातकम्मकरणे संपत्ते बारसाहदिवसे विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेन्ति, उवक्खडावित्ता मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधि-परिजणं बलं च बहवे गणणायग-दंडनायग जाव आमंतेइ ।

तओ पच्छा ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता सव्वालंकारविभूसिया महइमहालयंसि भोयणमंडवंसि तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं मित्तणाइ० गणणायग जाव सद्धिं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा एवं च णं विहरइ ।

जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा परमसुइभूया तं मित्तनाइनियगसयण-संबंधिपरिजण० गणणायग० विपुलेणं पुप्फगंधमल्लालंकारेण सक्कारेंति, संमाणेंति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता एव वयासी—] "जम्हा णं अम्हं इमे दारगे गयतालुसमाणे तं होउ णं अम्ह एयस्स दारगस्स नामधेज्जे गयसुकुमाले २ । तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरे नामं करेंति गयसुकुमालोत्ति सेसं जहा मेहे जाव[1] अलं भोगसमत्थे जाए यावि होत्था ।

तदनन्तर वह देवकी देवी अपने आवासगृह मे शय्या पर सोई हुई थी । वह वासगृह (शयनकक्ष) [भीतर से चित्रित था, बाहर से श्वेत और घिसकर चिकना बनाया हुआ था । उसका उपरिभाग विविध चित्रों से युक्त था और नीचे का भाग सुशोभित था । मणियो और रत्नो के प्रकाश से उसका अंधकार नष्ट हो गया था । वह एकदम समतल सुविभक्त भाग वाला, पचवर्ण के सरस और सुवासित पुष्प-पुंजों के उपचार से युक्त था । उत्तम-कालागुरु, कुन्दरुक और तुरुष्क (शिलारस) की धूप से चारों ओर सुगन्धित, सुगन्धी पदार्थों से सुवासित एव सुगन्धित द्रव्य की गुटिका के समान था । उसमें जो शय्या थी वह तकिया सहित, सिरहाने और पायते दोनो ओर तकियायुक्त थी । दोनों ओर से उन्नत और मध्य मे कुछ नमी (झुकी हुई) थी । विशाल गगा के किनारे की रेती के अवदाल (पैर रखने से फिसल जाने) के समान कोमल, क्षोमिक—रेशमी दुकूलपट से आच्छादित, रजस्त्राण (उड़ती हुई धूल को रोकने वाले वस्त्र) से ढंकी हुई, रक्तांशुक (मच्छरदानी) सहित, सुरम्य आजिनक (एक प्रकार का चमड़े का कोमल वस्त्र) रुई, बूर, नवनीत, अर्कतूल (आक की रुई) के समान कोमल स्पर्श वाली, सुगन्धित उत्तम पुष्प, चूर्ण और अन्य शयनोपचार से युक्त थी । ऐसी शय्या पर सोई हुई देवकी देवी ने अर्द्ध निद्रित अवस्था मे अर्द्ध रात्रि के समय उदार, कल्याण, शिव, धन्य, मगलकारक और शोभन महास्वप्न देखा और जागृत हुई ।

१. वर्ग १, सूत्र २.

अर्थात् हिंगुल धातु, तरुण सूर्य, तोते की चोंच और दीपशिखा के समान तेजोलेश्या का वर्ण होता है। प्रस्तुत सूत्र में तरुण शब्द रक्त अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, अन्यथा तेजोलेश्या के वर्ण सम्बन्धी अर्थ की संगति नहीं हो सकती।

जपासुमन, रक्तबन्धु-जीवक, लाक्षारस, सरस पारिजातक और तरुण दिवाकर समान जिसकी प्रभा हो, कान्ति हो, चमक हो, वर्ण हो, उसको 'जपासुमन—रक्तबन्धुजीवक-लाक्षारस-सरस पारिजातक-तरुण दिवाकर-समप्रभ' कहते हैं।

गय-तालुय-समाण—अर्थात्—गज हाथी को कहते हैं। तालु अर्थात् ऊपर के दांतों और कौवे के बीच का गड्ढा। गज के तालु को गजतालु कहते हैं। गज के तालु के समान जिसका तालु हो वह 'गज-तालु-समान' कहलाता है। वैसे सभी प्राणियों का तालु रक्त और कोमल होता है पर हाथी का तालु विशेष रूप से रक्त और कोमल माना गया है।

राजकुमार गजसुकुमार के युवक हो जाने पर उसके विवाह आदि के सम्बन्ध में क्या हुआ? इस जिज्ञासा के सम्बन्ध में सूत्रकार कहते हैं—

सोमिल ब्राह्मण

१६—तत्थ णं बारवईए नयरीए सोमिले नामं माहणे परिवसइ—अड्ढे। रिउव्वेय जाव [जजुव्वेद-सामवेद-अहव्वणवेद-इतिहासपंचमाणं, निघंटुछट्ठाणं चउण्हं वेदाणं संगोवंगाणं-सरहस्साणं सारए, वारए, धारए, पारए, सडंगवी, सट्ठितंतविसारए, संखाणे, सिक्खाकप्पे, वागरणे, छंदे, निरुत्ते, जोइसामयणे, अन्नेसु य बहूसु बम्हण्णएसु परिवायएसु नयेसु] सुपरिणिट्ठिए यावि होत्था। तस्स सोमिल-माहणस्स सोमसिरी नामं माहणी होत्था। सूमाल०। तस्स णं सोमिलस्स धूया सोमसिरीए माहणीए अत्तया सोमा नामं दारिया होत्था। सोमाला जाव[1] सुरूवा। रूवेण जाव (जोव्वणेणं) लावण्णेणं उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा यावि होत्था। तए णं सा सोमा दारिया अण्णया कयाइ ण्हाया जाव[2] विभूसिया, बहूहिं खुज्जाहिं जाव[3] परिक्खित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायमग्गंसि कणगतिंदूसएणं कीलमाणी चिट्ठइ।

उस द्वारका नगरी में सोमिल नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो समृद्ध था और ऋग्वेद, [यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद इन चारों वेदों, पांचवें इतिहास, तथा छठे निघण्टु, इन सबके अंगोपांग सहित रहस्य का ज्ञाता था। वह इनका 'सारक' (स्मारक) अर्थात् इनको पढ़ानेवाला था, अतः इनका प्रवर्तक था अथवा जो कोई वेदादि को भूल जाता था उसको पुनः याद कराता था, अतः वह स्मारक था। वह वारक था अर्थात् जो कोई दूसरे लोग वेदादि का अशुद्ध उच्चारण करते थे, उनको रोकता था, इसलिये वह 'वारक' था। वह 'धारक' था अर्थात् पढ़े हुए वेदादि को नहीं भूलनेवाला था अपितु उनको अच्छी तरह धारण करनेवाला था। वह वेदादि का 'पारग'—पारगत था। छह अंगों का ज्ञाता था। षष्टितन्त्र (कापिलीय शास्त्र) में विशारद (पंडित) था। वह गणितशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, आचारशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, छन्दशास्त्र, व्युत्पत्तिशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, इन सब शास्त्रों में तथा दूसरे बहुत से] ब्राह्मण और परिव्राजक सम्बन्धी शास्त्रों

---

१. देखिए तृतीय वर्ग का प्रथमसूत्र।
२. देखिए, तृतीय वर्ग का नवमसूत्र।
३. देखिए वर्ग ३ अ १, सूत्र ३।

भगवान् अरिष्टनेमि की उपासना

१८—तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणे सहसंबवणे उज्जाणे जाव [जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहअ अरिट्ठणेमिस्स छत्तातिछत्तं पडागातिपडागं विज्जाहरचारणे जंभए य देवे ओवयमाणे उप्पयमा पासइ, पासित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ। तंजहा—(१) सचित्ता दव्वाणं विउसरणयाए (२) अचित्ताणं दव्वाणं अविउसरणयाए (३) एगसाडियं उत्तरासंगकरणे (४) चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेणं (५) मणसो एगत्तीकरणेणं। जेणामेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणा मेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्त वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स णच्चासन्ने णाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे पंजलिउडे अभिमुहे विणएणं] पज्जुवासइ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव द्वारका नगरी के मध्य भाग से होते हुए निकले, [निकलकर जहां सहस्राम्रवन उद्यान था और भगवान् अरिष्टनेमि थे, वहां आये। आकर अरिहंत अरिष्टनेमि स्वामी के छत्र पर छत्र और पताकाओं पर पताका आदि अतिशयों को देखा तथा विद्याधरों, चारण मुनियों और जृंभक देवों को नीचे उतरते हुए एवं ऊपर उठते हुए देखा। देखकर पांच प्रकार अभिगम करके अरिहंत अरिष्टनेमि स्वामी के सन्मुख चले। वे पांच अभिगम इस प्रकार है —(१) पुष्प-पान आदि सचित्त द्रव्यों का त्याग, (२) वस्त्र-आभूषण आदि अचित्त द्रव्यों का अत्याग, (३) एक शाटिका (दुपट्टे) का उत्तरासंग, (४) भगवान् पर दृष्टि पड़ते ही दोनों हाथ जोड़ना और (५) मन को एकाग्र करना। ये अभिग्रह करके जहां अर्हत् भगवान् अरिष्टनेमि थे वहां आये। आकर अरिहंत अरिष्टनेमि को दक्षिण दिशा से आरम्भ करके (तीन बार) प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके भगवान् की स्तुतिरूप वन्दन किया और नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके भगवान् के अत्यन्त समीप नहीं और अत्यन्त दूर भी नहीं, ऐसे समुचित स्थान पर बैठकर, धर्मोपदेश सुनने की इच्छा करते हुए, नमस्कार करते हुए, दोनों हाथ जोड़े, सन्मुख रहकर] उपासना करने लगे।

धर्मदेशना और विरक्ति

१९—तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हस्स वासुदेवस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स तीसे य धम्मं कहेइ, कण्हे पडिगए। तए णं से गयसुकुमाले अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियं धम्मं सोच्चा, [जं नवरं, अम्मापियरं आपुच्छामि जहा मेहो महेलियावज्जं जाव वड्ढियकुले][1] [निसम्म हट्ठतुट्ठे अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते! निग्गंथं पावयणं,

१. यहाँ सूत्रकार ने गजसुकुमाल के जीवन को "जहा मेहो" यह कहकर मेघकुमार के समान बताकर आगे "महेलियावज्ज" पाठ दिया है, जिसका अर्थ होता है महिलारहित या अविवाहित। ज्ञाता० में मेघकुमार को विवाहित व्यक्त किया है। अतः यहाँ प्रस्तुत शब्द से दोनों की स्थिति की विभिन्नता दर्शायी है। यहाँ 'जाव' पाठ की पूर्ति हेतु इस विभिन्नता को दृष्टि में रख कर उपयुक्त पूर्ति-पाठों को नये पैरेग्राफ से शुरू किया गया है।

तए णं से गयसुकुमाले अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मापियरो एवं वयासी—तहेव णं तं अम्मो ! जहेव णं तुब्भे ममं एवं वयह—"तुमं सि णं जाया ! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीविय-उस्सासिए हियय-णंदि करे उंबरपुप्फ व दुल्लहे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए ? नो खलु जाया ! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओगं सहित्तए। तं भुंजाहि ताव जाया ! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो। तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं परिणयवए वड्ढिय-कुलवंसतंतुकज्जम्मि निराव-यक्खे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।" एवं खलु अम्मयाओ ! माणुस्सए भवे अधुवे अणितिए असासए वसणसओवद्दवाभिभूते विज्जुलयाचंचले अणिच्चे जलबुब्बुयसमाणे कुसग्गजलबिंदुसन्निभे संभब्भरागसरिसे सुविणदंसणोवमे सडण-पडण-विद्धंसण-धम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहणिज्जे। से के णं जाणइ अम्मयाओ। के पुव्वि गमणाए के पच्छा गमणाए ? त इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

तए णं तं गयसुकुमालं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—इमे य ते जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुबहु हिरण्णे य सुवण्णे य कंसे य दूसे य मणिमोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संतसार-सावएज्जे य अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पगामं दाउं पगामं भोत्तुं पगामं परिभाएउं। तं अणुहोहो ताव जाया ! विपुलं माणुस्सगं इड्ढिसक्कारसमुदयं। तओ पच्छा अणुभूय-कल्लाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।

तए णं से गयसुकुमाले अम्मापियरं एवं वयासी—तहेव णं त अम्मयाओ ! जं णं तुब्भे ममं एव वयह—"इमे ते जाया ! अज्जग-पज्जग-पिउपज्जयागए जाव पव्वइस्ससि।" एवं खलु अम्मयाओ ! हिरण्णे य जाव सावएज्जे य अग्गिसाहिए चोरसाहिए रायसाहिए दाइयसाहिए मच्चु-साहिए, अग्गिसामण्णे चोरसामण्णे रायसामण्णे दाइयसामण्णे मच्चुसामण्णे सडण-पडण-विद्धंसणधम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्स विप्पजहणिज्जे। से के णं जाणइ अम्मयाओ ! कि पुव्वि गमणाए ? के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति गयसुकुमालं कुमारं बहूहिं विसयाणुलोमाहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा सण्णवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे विसयपडिकूलाहिं संजमभउव्वेयकारियाहिं पण्णवणाहिं पण्णवेमाणा एवं वयासी—

एस णं जाया ! निग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए पडिपुण्णे नेयाउए संसुद्धे सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे सव्वदुक्खपहीणमग्गे, अहीव एगंतदिट्ठीए, खुरो इव एगंतधाराए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गंगा इव महानई पडिसोय-गमणाए, महासमुद्दो इव भुयाहिं दुत्तरे, तिक्खं कमियव्वं, गरुअं लंबेयव्वं, असिधारव्वयं चरियव्वं।

नो खलु कप्पइ जाया ! समणाणं निग्गंथाणं आहाकम्मिए वा उद्देसिए वा कीयगडे वा ठविए वा रइए वा दुब्भिक्खभत्ते वा कंतारभत्ते वा बद्दलियाभत्ते वा गिलाणभत्ते वा मूलभोयणे वा कंदभोयणे वा फलभोयणे वा बीयभोयणे वा हरियभोयणे वा भोत्तए वा पायए वा।

है कि—हे पुत्र ! यह दादा, पडदादा और पिता के पडदादा से आया हुआ यावत् उत्तम द्रव्य है इसे भोगो और फिर अनुभूतकल्याण होकर दीक्षा ले लेना। परन्तु हे माता-पिता ! यह हिरण सुवर्ण यावत् स्वापतेय (द्रव्य) सब अग्निसाध्य है—इसे अग्नि भस्म कर सकती है, चोर चुरा सकत है, राजा अपहरण कर सकता है, हिस्सेदार बँटवारा करा सकते हैं और मृत्यु आने पर यह अपना नहं रहता है। इसी प्रकार यह द्रव्य अग्नि के लिये समान है, अर्थात् द्रव्य उसके स्वामी का है, उसी प्रकार अग्नि का भी है और इसी तरह चोर, राजा, भागीदार और मृत्यु के लिये भी सामान्य है। यह सड़ने पडने और विध्वस्त होने के स्वभाव वाला है। (मरण) के पश्चात् या पहले अवश्य त्याग करने योग्य है। हे माता-पिता ! किसे ज्ञात है कि पहले कौन जायगा और पीछे कौन जायगा ? अतएव मैं यावत् दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ।

तत्पश्चात् गजसुकुमाल के माता-पिता जब गजसुकुमाल को विषयों के अनुकूल आख्यापना (सामान्य रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, प्रज्ञापना (विशेष रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, संज्ञापना (संबोधन करने वाली वाणी) से, विज्ञापना (अनुनय-विनय करने वाली वाणी) से समझाने बुझाने, संबोधन करने और अनुनय करने में समर्थ न हुए तब प्रतिकूल तथा संयम के प्रति भय और उद्वेग उत्पन्न करने वाली प्रज्ञापना से इस प्रकार कहने लगे—

'हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य (सत्पुरुषों के लिये हितकारी) है, अनुत्तर (सर्वोत्तम) है, कैवलिक-सर्वज्ञ कथित अथवा अद्वितीय है, प्रतिपूर्ण अर्थात् मोक्ष प्राप्त कराने वाले गुणों से परिपूर्ण है, नैयायिक अर्थात् न्याययुक्त या मोक्ष की ओर ले जाने वाला है, संशुद्ध अर्थात् सर्वथा निर्दोष है, शल्यकर्तन अर्थात् माया आदि शल्यों का नाश करने वाला है, सिद्धि का मार्ग है, मुक्ति का मार्ग (पापों के नाश का उपाय) है, निर्याण का (सिद्धि क्षेत्र का) मार्ग है, निर्वाण का मार्ग है और समस्त दुःखों को पूर्णरूपेण नष्ट करने का मार्ग है। जैसे सर्प अपने भक्ष्य को ग्रहण करने में निश्चल दृष्टि रखता है, उसी प्रकार इस प्रवचन में दृष्टि निश्चल रखनी पड़ती है। यह छुरे के समान एक धार वाला है, अर्थात् इस में दूसरी धार के समान अपवाद रूप क्रियाओं का अभाव है। इस प्रवचन के अनुसार चलना लोहे के जौ चबाना है। यह रेत के कवल के समान स्वादहीन है—विषयसुख से रहित है। इसका पालन करना गंगा नामक महानदी के पूर में सामने तिरने के समान कठिन है, भुजाओं से महासमुद्र को पार करना है, तीखी तलवार पर आक्रमण करने के समान है। महाशिला जैसी भारी वस्तुओं को गले में बाँधने के समान है। तलवार की धार पर चलने के समान है।

हे पुत्र ! निर्ग्रन्थ श्रमणों को आधाकर्मी, औद्देशिक क्रीतकृत (खरीद कर बनाया हुआ), स्थापित (साधु के लिए रख छोड़ा हुआ), रचित (मोदक आदि के चूर्ण को पुनः साधु के लिए मोदक रूप में तैयार किया हुआ), दुर्भिक्ष भक्त (साधु के लिये दुर्भिक्ष के समय बनाया हुआ भोजन) कान्तार भक्त (साधु के निमित्त अरण्य में बनाया हुआ आहार), वर्दलिका भक्त (वर्षा के समय उपाश्रय में आकर बनाया भोजन) ग्लानभक्त (रुग्ण गृहस्थ नीरोग होने की कामना से दे वह भोजन), आदि दूषित आहार ग्रहण करना नहीं कल्पता है।

इसी प्रकार मूल का भोजन, कंद का भोजन, फल का भोजन, बीजों का भोजन अथवा हरित का भोजन करना भी नहीं कल्पता है। इसके अतिरिक्त हे पुत्र ! तू सुख भोगने योग्य है, दुःख सहने योग्य नहीं है। तू शीत सहने में समर्थ नहीं है, उष्ण सहने में समर्थ नहीं है। भूख नहीं सह सकता,

तए णं गयसुकुमालं कुमारं कण्हे वासुदेवे अम्मापियरो य जाहे नो संचाएंति बहुयाहिं ... जाव–[तए णं से गयसुकुमालस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी– खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! गयसुकुमालस्स कुमारस्स महत्थं, महग्घं, महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा तहेव जाव पच्चप्पिणंति। तए णं तं गयसुकुमालं कुमारं अम्मा-पियरो सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहं निसीयावेंति जहा रायप्पसेणइज्जे, जाव अट्ठसएणं सोवण्णियाणं कलसाणं सव्विड्ढीए जाव महया रवेणं महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचंति।

महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचित्ता करयल जाव जएणं विजएणं वद्धावेंति, जएणं विजएणं वद्धावित्ता एवं वयासी – भण जाया ! किं देमो, किं पयच्छामो, किणा वा ते अट्ठो ?

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी – इच्छामि णं अम्म-ताओ ! कुत्तियावणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणिउं कासवगं च सद्दाविउं। निक्खमणं जहा महब्बलस्स[1]।

तए णं गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मापियरो कोडुंबियपुरिसे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं गहाय दोहिं सयसहस्सेहिं रयहरणं पडिग्गहं च उवणेह, सयसहस्सेण कासवगं सद्दावेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स पिउणा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ करयल जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं, तहेव जाव कासवगं सद्दावेंति। तए णं से कासवए गय-कुमारस्स पिउणा कोडुंबिय-पुरिसेहिं सद्दाविए समाणे हट्ठतुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे जाव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल० गयसुकुमालस्स कुमारस्स पियरं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता एवं वयासी—संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! जं मए करणिज्जं ? तए णं से गय-सुकुमालस्स पिया तं कासवगं एवं वयासी—तुमं देवाणुप्पिया ! गयसुकुमालस्स कुमारस्स परेणं जत्तेणं चउरंगुलवज्जे णिक्खमणपाओग्गे अग्गकेसे कप्पेहि। तए णं से कासवे एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ करयल जाव एवं सामी ! तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता सुरभिणा गंधोदएणं हत्थपाए पक्खालेइ, पक्खालित्ता सुद्धाए अट्ठ-पडलाए पोत्तीए मुहं बंधइ, मुहं बंधित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स परेणं जत्तेणं चउरंगुलवज्जे णिक्खमणपाओग्गे अग्गकेसे कप्पेइ।

तए णं सा गयसुकुमालस्स कुमारस्स माया देवई देवी हंसलक्खणेणं पडसाडएणं अग्गकेसे पडिच्छइ, अग्गकेसे पडिच्छित्ता सुरभिणा गंधोदएणं पक्खालेइ, सुरभिणा गंधोदएणं पक्खालित्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं, मल्लेहिं अच्चेइ, अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं, मल्लेहिं अच्चित्ता सुद्धे वत्थे बंधइ, सुद्धे वत्थे बंधित्ता रयणकरंडगंसि पक्खिवइ, पक्खिवित्ता हार-वारिधार-सिंदुवार-छिण्णमुत्तावलिप्पगासाइं सुयवियोग-दूसहाइं अंसूइं विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी एवं वयासी—एस णं अम्हं गयसुकुमालस्स कुमारस्स बहूसु तिहीसु य पव्वणीसु य उस्सवेसु य जण्णेसु य छणेसु य अपच्छिमे दरिसणे भविस्सइ इत्ति कट्टु ऊसीसगमूले ठवेइ।

तए णं तस्स गय-सुकुमालस्स अम्मापियरो दोच्चं पि उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावेंति, दोच्चं पि उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स सेयापीयएहिं कलसेहिं ण्हावेंति

1. महाबल के वर्णन में इस पाठ हेतु—"किं पयच्छामो, सेसं जहा जमालिस्स तहेव जाव तएणं"—दिया है। अतः प्रस्तुत जाव का पूरक पाठ महाबल, जमालि आदि के वर्णनों के आधार पर यथावश्यक रूप से गुंफित है।

तए णं गयसुकुमालस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरूढस्स समाणस्स तप्पढमयाए इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया; तं जहा-सोत्थिय-सिरिवच्छ जाव दप्पणा; तयाणंतरं च णं पुण्णकलसभिंगारं जहा उववाइए, जाव गगणतलमणुलिहंतो पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया; एवं जहा उववाइए तहेव भाणियव्वं जाव आलोयं च करेमाणा जयजयसद्दं च पउंजमाणा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तयाणंतरं च णं बहवे उग्गा भोगा जहा उववाइए जाव महापुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता, गयसुकुमालस्स कुमारस्स पुरओ य मग्गओ य पासओ य अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

तए णं से गयसुकुमाल-कुमारस्स पिया ण्हाए कयबलिकम्मे जाव हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं हय-गय-रह-पवरजोह-कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे, महयाभडचडगर जाव परिक्खित्ते गयसुकुमालस्स कुमारस्स पिट्ठओ अणुगच्छइ।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स—कुमारस्स पुरओ महं आसा आसवरा, उभओ पासिं णागा, णागवरा, पिट्ठओ रहा, रहसंगेल्ली। तए णं से गयसुकुमाल-कुमारे अब्भुग्गयभिंगारे, परिग्गहियतालियंटे, ऊसवियसेयछत्ते, पवीइयसेयचामरवालवीयणाए, सव्विड्ढीए जाव णाइयरवेणं, तयाणंतरं च बहवे लट्ठिग्गाहा कुंतग्गाहा जाव पुत्थयग्गाहा, जाव वीणग्गाहा; तयाणंतरं च णं अट्ठसयं गयाणं, अट्ठसयं तुरयाणं अट्ठसयं रहाणं; तयाणंतरं च णं लउड-असि-कोंतहत्थाणं बहूणं पायत्ताणीणं पुरओ संपट्ठियं; तयाणंतरं च णं बहवे राईसर-तलवर जाव सत्थवाहप्पभिइओ पुरओ संपट्ठिया बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव अरहओ अरिट्ठनेमी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं तस्स गयसुकुमाल-कुमारस्स बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छमाणस्स सिंघाडगतिय-चउक्क जाव पहेसु बहवे अत्थत्थिया जहा उववाइए, जाव अभिणंदंता य अभित्थुणंता य एवं वयासी-जय जय णंदा! धम्मेणं, जय जय णंदा! तवेणं, जय जय णंदा! भद्दं ते अभग्गेहिं णाणदंसण-चरित्तमुत्तमेहिं, अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जियं च पालेहि समणधम्मं; जियविग्घो वि य वसाहि तं देव! सिद्धिमज्झे, णिहणाहि य राग-दोसमल्ले, तवेणं धिइधणियबद्धकच्छे, मद्दाहि य अट्ठकम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं, अप्पमत्तो हराहि आराहणपडागं च धीर! तेलोक्करंगमज्झे, पावय वितिमिरमणुत्तरं केवलं च णाणं, गच्छ य मोक्खं परं पदं जिणवरोवदिट्ठेणं सिद्धिमग्गेणं अकुडिलेणं, हंता परीसहचमूं, अभिभविय गामकंटकोवसग्गाणं, धम्मे ते अविग्घमत्थु, त्ति कट्टु अभिणंदंति, य अभित्थुणंति य।

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे बारवईए नयरीए मज्झं-मज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्ताईए तित्थयराइसेए पासइ, पासित्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं ठवेइ, पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरुहइ। तए णं तं गयसुकुमालं कुमारं अम्मापियरो पुरओ काउं जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो जाव णमंसित्ता एवं वयासी-एवं खलु भंते! गयसुकुमाले कुमारे अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते जाव किमंग! पुण पासणयाए, से जहाणामए उप्पले इ वा, पउमे इ वा जाव सहस्सपत्ते इ वा पंके जाए जले संवुड्ढे णोवलिप्पइ पंकरएणं, णोवलिप्पइ जलरएणं, एवामेव गयसुकुमाले कुमारे कामेहिं जाए, भोगेहिं संवुड्ढे णोवलिप्पइ कामरएणं णोवलिप्पइ भोगरएणं णोवलिप्पइ मित्त-णाइ-नियग-सयण-संबंधिपरिजणेणं। एस णं देवाणुप्पिया! संसारभउव्विग्गे भीए

यदि ऐसा ही है तो हे पुत्र! हम एक दिन भी तुम्हारी राज्यश्री (राज्य वैभव की शोभा) देखना चाहते हैं। इसलिए हे पुत्र! कम से कम एक दिन के लिए भी तुम राज्यश्री को स्वीकार करो। तब गजसुकुमाल कुमार वासुदेव कृष्ण और माता-पिता की इच्छा का अनुसरण करके चुप रह गए।

इसके बाद गजसुकुमाल के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और इस प्रकार कहा - [देवानुप्रियो! शीघ्र ही इस द्वारका नगरी के बाहर और भीतर पानी का छिड़काव करो। झाड़-बुहार कर जमीन को साफ करो इत्यादि औपपातिक सूत्र के अनुसार कार्य करके उन पुरुषों ने आज्ञा वापस सौंपी।] इसके पश्चात् उन्होंने कौटुम्बिक पुरुषों से इस प्रकार कहा देवानुप्रियो! शीघ्र गजसुकुमाल कुमार के महार्थ, महामूल्य, महार्ह (महान् पुरुषों के योग्य) और विपुल राज्याभिषेक की तैयारी करो। सेवक पुरुषों ने आज्ञानुसार कार्य करके आज्ञा वापस सौंपी। इसके पश्चात् गजसुकुमाल के माता-पिता ने उन्हें उत्तम सिंहासन पर पूर्व की ओर मुख करके बैठाया। और एक सौ आठ सुवर्ण-कलशों से राजप्रश्नीय सूत्र के अनुसार यावत् एक सौ आठ मिट्टी के कलशों से सर्वऋद्धि द्वारा यावत् महाशब्द द्वारा राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया। अभिषेक करके हाथ जोड़कर यावत् जय-विजय शब्दों से बधाया। बधाकर वे इस प्रकार बोले—"हे पुत्र! हम तुझे क्या देवें? तेरे लिये क्या कार्य करें? तेरा क्या प्रयोजन है?" तब गजसुकुमाल ने इस प्रकार कहा—"हे माता-पिता! मैं कुत्रिकापण (कु अर्थात् पृथ्वी, त्रिक अर्थात् तीन, आपण अर्थात् दूकान। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीन लोकों में रही हुई वस्तुएँ मिलने का देवाधिष्ठित स्थान,) से रजोहरण और पात्र मँगवाना तथा नापित को बुलाना चाहता हूँ। तब गजसुकुमाल के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा—हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही भंडार में से तीन लाख सोनैये निकालो। उनमें से दो लाख सोनैया देकर कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र मँगाओ और एक लाख सोनैया देकर नाई को बुलाओ। उपर्युक्त आज्ञा सुनकर हर्षित और तुष्ट हुए सेवकों ने हाथ जोड़कर स्वामी के वचनों को स्वीकार किया और भंडार में से तीन लाख सुवर्ण-मुद्राएँ निकालकर कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र लाए तथा नाई को बुलाया। गजसुकुमाल के पिता के सेवक पुरुषों द्वारा बुलाये जाने पर नाई बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने स्नानादि किया और अपने शरीर को अलङ्कृत किया। फिर गजसुकुमाल के पिता के पास आया, आकर उन्हें जय-विजय शब्दों से बधाया और इस प्रकार कहा—"देवानुप्रिय! मेरे करने योग्य कार्य कहिये।" गजसुकुमाल के पिता ने नापित से इस प्रकार कहा—"देवानुप्रिय! गजसुकुमाल कुमार के अग्रकेश अत्यन्त यत्नपूर्वक चार अंगुल छोड़कर निष्क्रमण के योग्य काटो।" तब गजसुकुमाल कुमार के पिता की आज्ञा सुनकर नापित अत्यंत प्रसन्न हुआ और दोनों हाथ जोड़कर बोला—'स्वामिन्! जैसी आपकी आज्ञा' इस प्रकार कहकर विनयपूर्वक उनके वचनों को स्वीकार किया। फिर सुगन्धित गन्धोदक से हाथ-पैर धोये और शुद्ध आठ पट वाले वस्त्र से मुँह बाँधा, फिर अत्यन्त यत्नपूर्वक गजसुकुमाल कुमार के, निष्क्रमण योग्य चार अंगुल अग्रकेश छोड़कर शेष केशों को काटा।

तदनन्तर गजसुकुमाल की माता ने हंस के समान श्वेत वस्त्र में उन अग्रकेशों को ग्रहण किया। सुगन्धित गन्धोदक से धोया। उत्तम और प्रधान गन्ध तथा माला द्वारा उनका अर्चन किया और शुद्ध वस्त्र में बाँधकर उन्हें रत्नकरंडिये में रखा। इसके बाद गजसुकुमाल कुमार की माता, पुत्र-वियोग से रोती हुई हार, जल-धारा, सिन्दुवार वृक्ष के पुष्प और टूटी हुई मोतियों

प्रियो ! समान त्वचावाले, समान उम्रवाले, समान रूप-लावण्य और यौवन गुणों से युक्त तथ एक समान आभूषण और वस्त्र पहने हुए एक हजार उत्तम युवक पुरुषों को बुलाओ।" सेवक पुरुषों ने स्वामी के वचन स्वीकार कर शीघ्र ही हजार पुरुषों को बुलाया। वे हजार पुरुष हर्षि और तुष्ट हुए। वे स्नानादि करके एक समान आभूषण और वस्त्र पहनकर गजसुकुमाल के पित के पास आये और हाथ जोडकर, वधाकर, इस प्रकार बोले—'हे देवानुप्रिय ! हमारे योग्य जो कार्य हो वह कहिये।' तब गजसुकुमाल के पिता ने उनसे कहा—"देवानुप्रियो ! तुम सब गजसुकुमाल कुमार की शिविका को वहन करो। उन्होंने शिविका वहन की। जब गजसुकुमार शिविका पर आरूढ हो गए तो सब से आगे आठ मंगल अनुक्रम से चले। यथा :—(१) स्वस्तिक, (२) श्रीवत्स, (३) नन्दावर्त, (४) वर्धमानक, (५) भद्रासन, (६) कलश, (७) मत्स्य और (८) दर्पण। इन आठ मंगलों के पीछे पूर्ण कलश चला, इत्यादि औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार यावत् गगनतल को स्पर्श करती हुई वैजयन्ती (ध्वजा) चली। लोग जय-जयकार करते हुए अनुक्रम से आगे चले। इसके बाद उग्रकुल, भोगकुल में उत्पन्न पुरुष यावत् बहुसंख्यक पुरुषों के समूह गजसुकुमाल के आगे पीछे और आसपास चलने लगे।

स्नात एवं विभूषित गजसुकुमाल के पिता हाथी के उत्तम कंधे पर चढे। कोरण्टक पुष्प की माला से युक्त छत्र धारण किये हुए, दो श्वेत चामरों से विजाते हुए, अश्व, हाथी, रथ और सुभटों से युक्त, चतुरंगिनी सेना सहित और महासुभटों के वृन्द से परिवृत गजसुकुमाल के पिता उनके पीछे चलने लगे।

गजसुकुमाल के आगे महान् और उत्तम घोडे, दोनों ओर उत्तम हाथी, पीछे रथ और रथ का समूह चला। इस प्रकार ऋद्धि सहित यावत् वाद्यों के शब्दों से युक्त गजसुकुमाल चलने लगे। उनके आगे कलश और तालवृन्त लिये हुए पुरुष चले। उनके सिर पर श्वेत छत्र धारण किया हुआ था। दोनों ओर श्वेत चामर और पंखे विजाये जा रहे थे। इनके पीछे बहुत-से लाठी वाले, भाला वाले, पुस्तकवाले यावत् वीणावाले पुरुष चले। उनके पीछे एक सौ आठ हाथी, एक सौ आठ घोडे और एक सौ आठ रथ चले। उसके बाद लकड़ी, तलवार, भाला लिये हुए पदाति पुरुष चले। उनके पीछे बहुत-से युवराज, धनिक, तलवर, यावत् सार्थवाह आदि चले। इस प्रकार द्वारका नगरी के बीच में चलते हुए नगर के बाहर सहस्राम्रवन उद्यान में अरिहंत अरिष्टनेमि के पास जाने लगे।

द्वारका नगरी के बीच में निकलते हुए गजसुकुमाल कुमार को शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क यावत् राजमार्गों में बहुत से धनार्थी, भोगार्थी और कामार्थी पुरुष, अभिनन्दन करते हुए एवं स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे नन्द (आनन्द दायक)! तुम्हारा भद्र (कल्याण) हो। हे नन्द ! अखण्डित उत्तम ज्ञान, दर्शन और चारित्र द्वारा अविजित इन्द्रियों को जीतो और श्रमण धर्म का पालन करो। धैर्य रूपी कच्छ को मजबूत बांधकर सर्व विघ्नों को जीतो। इन्द्रियों को वश करके परिषह रूपी सेना पर विजय प्राप्त करो। तप द्वारा रागद्वेष रूपी मल्लों पर विजय प्राप्त करो और उत्तम शुक्ल-ध्यान द्वारा अष्ट कर्म रूपी शत्रुओं का मर्दन करो। हे धीर ! तीन लोक रूपी विश्व-मण्डप में आप आराधना रूपी पताका लेकर अप्रमत्ततापूर्वक विचरण करें और निर्मल, विशुद्ध, अनुत्तर केवल-ज्ञान प्राप्त करें तथा जिनवरोपदिष्ट सरल सिद्धि-मार्ग द्वारा परम पद रूप मोक्ष को प्राप्त करें। आपके धर्म-मार्ग में किसी प्रकार का विघ्न नहीं हो।" इस प्रकार लोग अभिनन्दन और स्तुति करने लगे।

सोमिल द्वारा उपसर्ग

२२—इमं च णं सोमिले माहणे सामिधेयस्स अट्ठाए बारवईओ नयरीओ बहिया पुव्वणिग्गए। समिहाओ य दब्भे य कुसे य पत्तामोडं य गेण्हइ, गेण्हित्ता तओ पडिणियत्तइ, पडिणियत्तित्ता महाकालस्स सुसाणस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे-वीईवयमाणे संझाकालसमयंसि पविरलमणूसंसि गयसुकुमालं अणगारं पासइ, पासित्ता तं वेरं सरइ, सरित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे एवं वयासी—

"एस णं भो! से गयसुकुमाले कुमारे अपत्थियपत्थिए-जाव [दुरंत-पंत-लक्खणे, हीणपुण्णचाउद्दसिए, सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति] परिवज्जिए, जे णं मम धूयं सोमसिरीए भारियाए अत्तयं सोमं दारियं अदिट्ठदोसपत्तियं कालवत्तिणिं विप्पजहित्ता मुंडे जाव पव्वइए। तं सेयं खलु मम गयसुकुमालस्स कुमारस्स वेरनिज्जायणं करेत्तए; एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता दिसापडिलेहणं करेइ, करेत्ता सरसं मट्टियं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव गयसुकुमाले अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए मट्टियाए पालिं बंधइ, बंधित्ता जलंतीओ चियगाओ फुल्लियकिंसुयसमाणे खइरिंगाले कहल्लेणं[1] गेण्हइ, गेण्हित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए तओ खिप्पामेव अवक्कमइ, अवक्कमित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

इधर सोमिल ब्राह्मण समिधा (यज्ञ की लकडी) लाने के लिये द्वारका नगरी के बाहर सुकुमाल अणगार के श्मशानभूमि में जाने से पूर्व ही निकला था। वह समिधा, दर्भ, कुश, डाभ एवं मे पत्रामोडों को लेता है। उन्हें लेकर वहाँ से अपने घर की तरफ लौटता है। लौटते समय महाकाल श्मशान के निकट (न अति दूर न अति सन्निकट) से जाते हुए सन्ध्या काल की वेला में, जबकि मनुष्यों का गमनागमन नहीं के समान हो गया था, उसने गजसुकुमाल मुनि को वहाँ ध्यानस्थ खड़े देखा। उन्हें देखते ही सोमिल के हृदय में वैर भाव जागृत हुआ। वह क्रोध से तमतमा उठता है और मन ही मन इस प्रकार बोलता है—

अरे! यह तो वही अप्रार्थनीय का प्रार्थी (मृत्यु की इच्छा करने वाला), [दुरन्त-प्रान्त-लक्षण वाला, पुण्यहीन चतुर्दशी में उत्पन्न हुआ ह्री और श्री (लज्जा तथा लक्ष्मी) से] परिवर्जित, गजसुकुमाल कुमार है, जो मेरी सोमश्री भार्या की कुक्षि से उत्पन्न, यौवनावस्था को प्राप्त निर्दोष पुत्री सोमा कन्या को अकारण ही त्याग कर मुंडित हो यावत् श्रमण बन गया है! इसलिये मुझे निश्चय ही गजसुकुमाल से इस वैर का बदला लेना चाहिये। इस प्रकार वह सोमिल सोचता है और सोचकर सब दिशाओं की ओर देखता है कि कहीं से कोई देख तो नहीं रहा है। इस विचार से चारों ओर देखता हुआ पास के ही तालाब में वह गीली मिट्टी लेता है, लेकर गजसुकुमाल मुनि के मस्तक पर पाल बाँधता है। पाल बाँधकर जलती हुई चिता में से फूले हुए किंशुक (पलाश) के फूल के समान लाल-लाल खैर के अंगारों को किसी खप्पर (ठीकरे) में लेकर उन दहकते हुए अंगारों को गजसुकुमाल मुनि के सिर पर रख देता है। रखने के बाद इस भय से कि कहीं उसे कोई देख न ले, भयभीत होकर घबरा कर, त्रस्त होकर एवं उद्विग्न होकर वह वहाँ से शीघ्रतापूर्वक पीछे की ओर हटता हुआ भागता है। वहाँ से भागता हुआ वह सोमिल जिस ओर से आया था उसी ओर चला जाता है।

1. पाठान्तर—कभल्लेण।

गजसुकुमाल मुनि ने श्रमणधर्म की अत्यन्त उत्कृष्ट आराधना की है" यह जान कर अपनी वैक्रिय शक्ति के द्वारा दिव्य सुगन्धित अचित्त जल की तथा पाच वर्णों के दिव्य अचित्त फूलों एव वस्त्रों की वर्षा की और दिव्य मधुर गीतो तथा गन्धर्ववाद्यन्त्रो की ध्वनि से आकाश को गु जा दिया।

विवेचन—परम आत्मस्थ, आत्म-समाधि मे लीन मुनि गजसुकुमाल ने सोमिल-ब्राह्मण द्वारा की गई यह भीषणातिभीषण हृदयविदारक महावेदना पूर्ण समभावपूर्वक निर्द्वन्द्व भाव से सहन की। परिणामत. केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर वे मोक्ष मे पधार गये।

मोक्ष-प्राप्ति मे परममहयोगी रूप (१) शुभ परिणाम और (२) प्रशस्त अध्यवसाय इन दो पदो का "सुभेण परिणामेण पसत्थज्झवसाणेण" शब्दो मे सूत्र मे उल्लेख किया है। दोनों का अर्थ-विभेद इस प्रकार—१ सामान्य रूप से शुभ निष्पाप विचारों को शुभ परिणाम कहते हैं। २. विशेष रूप से आत्म-समाधि मे लग जाने या गभीर आत्मचिन्तन मे सलग्न होने की दशा को प्रशस्त अध्यवसाय कहा गया है।

"तदावरणिज्जाण कम्माण"—इस पद मे कर्म विशेष्य है और 'तदावरणीय' यह उसका विशेषण है। कर्म शब्द आत्मप्रदेशो से मिले कर्माणुओ का बोधक है और ज्ञान-दर्शन आदि आत्मिक गुणो को ढँकनेवाले, इस अर्थ का सूचक तदावरणीय शब्द है।

"कम्मरयविकिरणकर'—कर्म-रजोविकिरण-कर अर्थात् ज्ञानावरणीय आदि कर्म रूप रज-मल का विकिरण—नाश करनेवाले को कमर्रजोविकिरण-कर कहते है।

"अपुव्वकरण—अपूर्वकरणम्, आत्मनोऽभूतपूर्व शुभपरिणामम्—अर्थात्—अपूर्णकरण शब्द जिसकी पहले प्राप्ति नही हुई—इस अर्थ का बोधक है। यह आठवे "निवृत्तिबादर गुणस्थान" का भी परिचायक माना गया है। इस गुणस्थान से दो श्रेणिया आरभ होती है। उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी—उपशम श्रेणीवाला जीव मोहनीय कर्म की प्रकृतियो का उपशम करता हुआ ग्यारहवे गुणस्थान तक जाकर रुक जाता है और नीचे गिर जाता है। क्षपक श्रेणी वाला जीव दसवं गुणस्थान से सीधा बारहवे गुणस्थान पर जाकर अप्रतिपाती हो जाता है। आठवें गुणस्थान मे आरूढ हुआ जीव क्षपक श्रेणी से उत्तरोत्तर बढता हुआ जब बारहवे गुणस्थान मे पहुच जाता है तब समस्त घाती कर्मों का क्षय करता हुआ कैवल्य प्राप्त कर लेता है। तत्पश्चात् तेरहवे गुणस्थान मे स्थिर होता है। आयु पूर्ण होने पर चौदहवा गुणस्थान प्राप्त करके परम कल्याण रूप मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है। प्रस्तुत मे सूत्रकार ने "अपुव्वकरण" पद देकर गजसुकुमाल के साथ अपूर्वकरण अवस्था का सम्बन्ध सूचित किया है। भाव यह है कि गजसुकुमाल मुनि ने आठवे गुणस्थान मे प्रविष्ट होकर क्षपक श्रेणी को अपना लिया था।

अणतं ···दसणे आदि पदो की व्याख्या इस प्रकार है—१. अनंत—अंत रहित, जिसका कभी अन्त न हो, जो सदा काल बना रहे। २. अनुत्तर-प्रधान—जिससे बढकर अन्य कोई ज्ञान नही है, सबसे ऊँचा। ३. निर्व्याघात-व्याघात—रुकावट रहित। ४. निरावरण—जिस पर कोई आवरण-पर्दा नही है, चारों ओर से ज्ञान-प्रकाश की वर्षा करने वाला। ५. कृत्स्न-सपूर्ण, जो अपूर्ण नही है। ६. प्रतिपूर्ण—ससार के सब ज्ञेय पदार्थों को अपना विषय बनानेवाला, जिससे ससार का कोई पदार्थ ओझल नही है।

तब कृष्ण वासुदेव ने द्वारका नगरी के मध्य भाग से जाते समय एक पुरुष को देखा, अति वृद्ध, जरा से जर्जरित [अति क्लान्त, कुम्हलाया हुआ दुर्बल] एवं थका हुआ था। वह दु:खी था। उसके घर के बाहर राजमार्ग पर ईंटो का एक विशाल ढेर पड़ा था जिसे वह एक-एक ईंट करके अपने घर में स्थानान्तरित कर रहा था। तब उन कृष्ण वासुदेव ने उस पुरुष अनुकंपा के लिये हाथी पर बैठे हुए ही एक ईंट उठाई, उठाकर बाहर रास्ते से घर के भी पहुंचा दी।

तब कृष्ण वासुदेव के द्वारा एक ईंट उठाने पर (उनके अनुयायी) अनेक सैकड़ों पुरुषों द्वा यह बहुत बड़ा ईंटो का ढेर बाहर गली में से घर के भीतर पहुचा दिया गया।

गयसुकुमाल की सिद्धि की सूचना

२५—तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणं अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता जाव [अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहि करेइ, करेत्ता] वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"कहि णं भंते ! से ममं सहोयरे कणीयसे भाया गयसुकुमाले अणगारे जं णं अहं वंदामि नमसामि ?

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"साहिए णं कण्हा ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं अप्पणो अट्ठे।" तए णं से कण्हे वासुदेवे अरह अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—"कहण्णं भंते ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे ?" तए ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु कण्हा गयसुकुमाले णं अणगारे मम कल्लं पुव्वावरण्हकालसमयंसि वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'इच्छामि णं जाव' उवसंपज्जित्ता णं विहरइ'।"

तए णं तं गयसुकुमालं अणगारं एगे पुरिसे पासइ, पासित्ता आसुरत्ते जाव[1] सिद्धे। तं एव खलु कण्हा ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे।

वृद्ध पुरुष की सहायता करने के अनन्तर कृष्ण वासुदेव द्वारका नगरी के मध्य में से होते हुए जहां भगवन्त अरिष्टनेमि विराजमान थे वहां आ गए। कृष्ण ने दाहिनी ओर से आरंभ करके तीन बार भगवान् की प्रदक्षिणा-परिक्रमा की, वदन-नमस्कार किया। इसके पश्चात् गजसुकुमाल मुनि को वहां न देखकर उन्होंने अरिहंत अरिष्टनेमि से वंदन-नमस्कार करने के बाद पूछा—"भगवन् ! मेरे सहोदर लघुभ्राता मुनि गजसुकुमाल कहां हैं ? मैं उनको वन्दना-नमस्कार करना चाहता हूं।"

महाराज कृष्ण के इस प्रश्न का समाधान करते हुए अरिहंत अरिष्टनेमि ने कहा—कृष्ण ! मुनि गजसुकुमाल ने मोक्ष प्राप्त करने का अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया है।

अरिष्टनेमि भगवान् से अपने प्रश्न का उत्तर सुन कर कृष्ण वासुदेव अरिष्टनेमि भगवान् के चरणों में पुनः निवेदन करने लगे—

आधारित है। आयु बांधते समय अगर परिणाम मंद हो तो आयु का बंध शिथिल पड़ेगा, अगर परिणाम तीव्र हो तो बंध तीव्र होगा। शिथिल बंधवाली आयु निमित्त मिलने पर घट जाती है—नियत काल से पहले ही भोग ली जाती है और तीव्र बंधवाली (निकाचित) आयु निमित्त मिलने पर भी नहीं घटती है। स्थानांग सूत्र में आयुभेद के सात निमित्त बताये हैं जो इस प्रकार हैं—

१. अज्झवसाण—अध्यवसान—स्नेह या भय रूप प्रबल मानसिक आघात होने पर आयु समय से पहले ही समाप्त होती है।

२ निमित्त—शस्त्र, दण्ड, अग्नि आदि का निमित्त पाकर आयु शीघ्र समाप्त हो जाती है।

३. आहार—अधिक भोजन करने से आयु घट जाती है।

४ वेदना—किसी भी अंग में असह्य वेदना होने पर आयु के दलिक समय से पूर्व ही उदय में आकर आत्मा से झड़ जाते हैं।

५. पराघात—गड्ढे में गिरना, छत का ऊपर गिर जाना आदि बाह्य आघात पाकर आयु की उदीरणा हो जाती है।

६. स्पर्श—सर्प आदि जहरीले जीवों के काटने पर अथवा ऐसी वस्तु का स्पर्श होने पर जिससे शरीर में विष फैल जाए, आयु असमय में ही समाप्त हो जाती है।

७. आण-पाण—श्वास की गति बन्द हो जाने पर आयु-भेद हो जाता है। निमित्तों को पाकर जो आयु नियत काल समाप्त होने से पहले ही अन्तर्मुहूर्तमात्र में भोग ली जाती है, उस आयु का नाम अपवर्तनीय आयु है। इसे सोपक्रम आयु भी कहते हैं। जो उपक्रम सहित हो वह सोपक्रम है। तीव्र शस्त्र, तीव्र विष,तीव्र अग्नि आदि निमित्तों का प्राप्त होना उपक्रम है। अनपवर्तनीय आयु सोपक्रम और निरुपक्रम दोनों प्रकार की होती है। दूसरे शब्दों में इस अनपवर्तनीय आयु को अकालमृत्यु लानेवाले अध्यवसान आदि उक्त निमित्तों का सन्निधान होता भी है और नहीं भी होता है। उक्त निमित्तों का सन्निधान होने पर भी अनपवर्तनीय आयु नियतकाल से पहले पूर्ण नहीं होती।

यहाँ इतना ध्यान रखना आवश्यक है कि बन्धकाल में आयुकर्म के जितने दलिक बंधते हैं, उन सब का भोग तो जीव को करना ही पड़ता है, केवल वह भोग जब स्वल्प काल में हो जाता है तब वह कालिक स्थिति की अपेक्षा अकालमरण कहा जाता है।

२७—कहण्णं भंते ! तेण पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे ?

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

से नूणं कण्हा ! तुमं ममं पायवंदए हव्वमागच्छमाणे बारवईए नयरीए एगं पुरिसं—जाव[1] [जुण्णं जराजज्जरियदेहं आउरं झूसियं पिवासियं दुब्बलं किलंतं महइमहालयाओ इट्टगरासीओ एगमेगं इट्टगं गहाय बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पवेसमाणं पाससि । तए णं तुमे एगाए इट्टगाए गहियाए समाणीए अणेगेहिं पुरिससएहिं से महालए इट्टगस्स रासी बहिया रत्थापहाओ अंतोघरंसि] अणुपवेसिए। जहा णं कण्हा ! तुमे तस्स पुरिसस्स साहिज्जे दिण्णे, एवामेव कण्हा ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स अणेगभव-सयसहस्स-संचियं कम्मं उदीरेमाणेणं बहुकम्मणिज्जरत्थं साहिज्जे दिण्णे।

१. देखिए सूत्र २४.

गई है—बंध, उदय, उदीरणा और सत्ता। मिथ्यात्वादि के निमित्त से ज्ञानावरणीय आदि के रूप में परिणत होकर कर्म-पुद्गलों का आत्मा के साथ दूध-पानी की तरह मिल जाना बंध है। अबाधाकाल समाप्त होने पर और उदय-काल-फलदान का समय आने पर कर्मों का शुभाशुभ फल देना उदय है। अबाधाकाल (बंधे हुए कर्मों का जब तक आत्मा को फल नहीं मिलता वह काल) व्यतीत हो चुकने पर भी जो कर्म-दलिक बाद में उदय में आनेवाले हैं, उनको प्रयत्न-विशेष से खींच कर उदय-प्राप्त दलिकों के साथ भोग लेना उदीरणा है। बंधे हुए कर्मों का अपने स्वरूप को न छोड़ कर आत्मा के साथ लगे रहना सत्ता है। उदय और उदीरणा में यह अन्तर है कि उदय में किसी भी प्रकार के प्रयत्न के बिना स्वाभाविक क्रम से कर्मों के फल का भोग होता है और उदीरणा में प्रयत्न करने पर ही कर्मफल का भोग होता है। प्रस्तुत में मुनि गजसुकुमाल ने जो कर्म-फल का उपभोग किया है, वह स्वाभाविक क्रम से नहीं किया, किन्तु सोमिल ब्राह्मण के प्रयत्न विशेष से कर्मों का उपभोग कराया गया है, अतः यहां कर्मों की उदीरणा अर्थ अपेक्षित है।

सोमिल ब्राह्मण का मरण

२८—तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—से णं भंते! पुरिसे मए कहं जाणियव्वे? तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—जे णं कण्हा! तुमं बारवईए नयरीए अणुप्पविसमाणं पासेत्ता ठियए चेव ठिइभेएणं कालं करिस्सइ, तण्णं तुमं जाणिज्जासि "एस णं से पुरिसे।" तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव आभिसेयं हत्थिरयणं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिं दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं तस्स सोमिलमाहणस्स कल्लं जाव[1] जलंते अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे—एवं खलु कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं पायवंदए निग्गए। तं नायमेयं अरहया, विण्णायमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया, सिट्ठमेयं अरहया भविस्सइ कण्हस्स वासुदेवस्स। तं न नज्जइ णं कण्हे वासुदेवे ममं केणइ कु-मारेणं मारिस्सइ त्ति कट्टु भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ। कण्हस्स वासुदेवस्स बारवइं नयरिं अणुप्पविसमाणस्स पुरओ सपक्खिं सपडिदिसिं हव्वमागए।

भगवान् अरिष्टनेमि द्वारा अपने प्रश्न का समाधान प्राप्त करके कृष्ण वासुदेव फिर भगवान् के चरणों में निवेदन करने लगे—"भगवन्! मैं उस पुरुष को किस तरह पहचान सकता हूँ?" श्रीकृष्ण के इस प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान् अरिष्टनेमि कहने लगे—'कृष्ण! यहां से लौटने पर जब तुम द्वारका नगरी में प्रवेश करोगे तो उस समय एक पुरुष तुम्हें देखकर भयभीत होगा, वह वहीं पर खड़ा-खड़ा ही गिर जाएगा। आयु की समाप्ति हो जाने से मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। उस समय तुम समझ लेना कि यह वही पुरुष है।' अरिष्टनेमि भगवान् द्वारा अपने प्रश्न का उत्तर सुनकर भगवान् अरिष्टनेमि को वंदन एवं नमस्कार करके श्रीकृष्ण ने वहां से प्रस्थान किया और अपने प्रधान हस्तिरत्न पर बैठकर अपने घर की ओर रवाना हुए।

उधर उस सोमिल ब्राह्मण के मन में दूसरे दिन सूर्योदय होते ही इस प्रकार विचार उत्पन्न

१. देखिए—तृतीय वर्ग, सूत्र २८.

ममं सहोयरं कणीयसे भायरं गयसुकुमाले अणगारं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए त्ति कट्टु सोमिलं माहणं पाणेहिं कड्ढावेइ, कड्ढावेत्ता तं भूमिं पाणिएणं अब्भोक्खावेइ, अब्भोक्खावेत्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। सयं गिहं अणुप्पविट्ठे।

उस समय सोमिल ब्राह्मण कृष्ण वासुदेव को सहसा सम्मुख देख कर भयभीत हुआ और जहाँ का तहाँ स्तम्भित खड़ा रह गया। वहीं खड़े-खड़े ही स्थितिभेद से अपना आयुष्य पूर्ण हो जाने से सर्वांग-शिथिल हो धड़ाम से भूमितल पर गिर पड़ा। उस समय कृष्ण वासुदेव सोमिल ब्राह्मण को गिरता हुआ देखते है और देखकर इस प्रकार बोलते हैं—

"अरे देवानुप्रियो! यही वह मृत्यु की इच्छा करने वाला तथा लज्जा एवं शोभा से रहित सोमिल ब्राह्मण है, जिसने मेरे सहोदर छोटे भाई गजसुकुमाल मुनि को असमय में ही काल का ग्रास बना डाला।" ऐसा कहकर कृष्ण वासुदेव ने सोमिल ब्राह्मण के उस शव को चाडालों के द्वारा घसीटवा कर नगर के बाहर फिकवा दिया और उस शव के स्पर्श वाली भूमि को पानी से धुलवाया। उस भूमि को पानी से धुलवाकर कृष्ण वासुदेव अपने राजप्रासाद में पहुँचे और अपने आगार में प्रविष्ट हुए।

निक्षेप

३०—एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[1] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जंबू को सम्बोधित करते हुए कहते है—हे जंबू! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अन्तकृद्दशांग सूत्र के तृतीय वर्ग के अष्टम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है।



१०-१३ अज्झयणाणि

तृतीय वर्ग की समाप्ति

३२—एवं दुम्मुहे वि । कूवए वि । तिण्णि वि बलदेव-धारिणी-सुया ।
दारुए वि एवं चेव, नवरं- वसुदेव-धारिणी-सुए ।
एवं-अणाहिट्ठी वि वसुदेव-धारिणी-सुए ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[1] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदस तच्चस्स वग्गस्स तेरसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

इसी प्रकार दुर्मुख और कूपदारक कुमार का वर्णन जानना चाहिये । दोनों के पिता बल और माता धारिणी थी ।

दारुक और अनाधृष्टि भी इसी प्रकार है । विशेष यह है कि वसुदेव पिता और धारि माता थी ।

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा—"हे जंबू ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने आठवें अंग अंतग दशा सूत्र के तीसरे वर्ग के एक से लेकर तेरह अध्ययनों का यह भाव फरमाया है ।"

श्रीजवू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—"भगवन् ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्र ने आठवें अग अतकृत्दशा के तीसरे वर्ग का जो वर्णन किया वह सुना । अतगडदशा के चौथे वर्ग के हे पूज्य ! श्रमण भगवान् ने क्या भाव दर्शाये हैं, यह भी मुझे बताने की कृपा करें ।"

सुधर्मा स्वामी ने जवू स्वामी से कहा—"हे जवू ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने अंतगड दशा के चौथे वर्ग मे दश अध्ययन कहे है, जो इस प्रकार है—

(१) जालि कुमार, (२) मयालि कुमार, (३) उवयालि कुमार, (४) पुरुपसेन कुमार (५) वारिपेण कुमार, (६) प्रद्युम्न कुमार, (७) शाम्ब कुमार (८) अनिरुद्ध कुमार, (९) सत्यनेमि कुमार और (१०) दृढनेमि कुमार ।

जवू स्वामी ने कहा—भगवन् ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने चौथे वर्ग के दश अध्ययन कहे है, तो प्रथम अध्ययन का श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने क्या अर्थ बताया है ।'

जालि प्रभृति

सुधर्मा स्वामी ने कहा—हे जवू ! उस काल और उस समय मे द्वारका नामकी नगरी थी, जिसका वर्णन प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन मे किया जा चुका है । श्रीकृष्ण वासुदेव वहाँ राज्य कर रहे थे । उस द्वारका नगरी मे महाराज 'वसुदेव' और रानी 'धारिणी' निवास करते थे । यहाँ राजा और रानी का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार जान लेना चाहिए । जालिकुमार का वर्णन गौतम कुमार के समान जानना । विशेप यह कि जालिकुमार ने युवावस्था प्राप्तकर पचास कन्याओं से विवाह किया तथा पचास-पचास वस्तुओं का दहेज मिला । दीक्षित होकर जालि मुनि ने बारह अगो का ज्ञान प्राप्त किया, सोलह वर्ष दीक्षापर्याय का पालन किया, शेप सब गौतम कुमार की तरह यावत् शत्रुंजय पर्वत पर जाकर सिद्ध हुए ।

इसी प्रकार मयालिकुमार, उवयालि कुमार, पुरुपसेन और वारिपेण का वर्णन जानना चाहिये ।

इसी प्रकार प्रद्युम्न कुमार का वर्णन भी जानना चाहिये । विशेप—कृष्ण उनके पिता और रुक्मिणी देवी माता थी ।

इसी प्रकार साम्ब कुमार भी; विशेप—उनकी माता का नाम जाम्बवती था । ये दोनों श्रीकृष्ण के पुत्र थे ।

इसी प्रकार अनिरुद्ध कुमार का भी वर्णन है । विशेप यह है कि प्रद्युम्न पिता और वैदर्भी उसकी माता थी ।

इसी प्रकार सत्यनेमि कुमार का वर्णन है । विशेप, समुद्रविजय पिता और शिवा देवी माता थी ।

इसी प्रकार दृढनेमि कुमार का भी वर्णन समझना । ये सभी अध्ययन एक समान हैं ।

सुधर्मा स्वामी ने कहा—इस प्रकार हे जवू ! दश अध्ययनो वाले इस चौथे वर्ग का श्रमण

पंचमो वग्गो

पढमं अज्झयणं—पउमावई

अ० अरिष्टनेमि का पदार्पण, धर्मदेशना

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[1] संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, पंचमस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[2] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेण भगवया महावीरेणं जाव[3] संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—

संग्रहणी-गाथा

(१) पउमावई य (२) गोरी (३) गंधारी (४) लक्खणा (५) सुसीमा य ।
(६) जंबवई (७) सच्चभामा (८) रुप्पिणी (९) मूलसिरि (१०) मूलदत्ता वि ॥

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[4] संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नयरी । जहा पढमे जाव[5] कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव[6] विहरइ । तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावई नामं देवी होत्था, वण्णओ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे जाव [अहापडिरूवं उग्गहं उगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे] विहरइ । कण्हे वासुदेवे निग्गए जाव[7] पज्जुवासइ । तए णं सा पउमावई देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठतुट्ठा जहा देवई देवी जाव[8] पज्जुवासइ । तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावईए य, जाव धम्मकहा । परिसा पडिगया ।

आर्य जंबू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—"भगवन् ! यावत् मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने यदि अन्तगडसूत्र के चतुर्थ वर्ग का यह अर्थ वर्णन किया है, तो भगवन् ! यावत् मोक्ष-प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अन्तगडसूत्र के पंचम वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

उत्तर में आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—"हे जंबू ! यावत् मोक्ष-प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अन्तगडसूत्र के पंचम वर्ग के दस अध्ययन बताए हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) पद्मावती देवी (२) गौरी देवी (३) गान्धारी देवी (४) लक्ष्मणा देवी (५) सुसीमा देवी (६) जाम्बवती देवी (७) सत्यभामा देवी (८) रुक्मिणी देवी (९) मूलश्री देवी और (१०) मूलदत्ता देवी ।

जम्बू स्वामी ने पुनः पूछा—'भंते ! श्रमण भगवान् महावीर ने पंचम वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं तो प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?' सुधर्मा स्वामी ने कहा—

हे जंबू ! उस काल उस समय में द्वारका नाम की एक नगरी थी, जिसका वर्णन प्रथम

१—४. प्रथम वर्ग, सूत्र २.
५. प्रथम वर्ग सूत्र ५, ६.
६. प्रथम वर्ग, सूत्र ६.
७. तृतीय वर्ग, सूत्र १८
८. तृतीय वर्ग, सूत्र ९.

य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे नो संचाएमि अरहओ अरिट्ठनेमिस्स जाव [अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइत्तए।'

'कण्हाइ!' अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"से नूणं कण्हा! तव अयं अज्झत्थिए चितिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-धण्णा णं ते जालिप्पभिइकुमारा जाव[3] पव्वइया। से नूणं कण्हा! अत्थे समत्थे?

हंता अत्थि।

तं नो खलु कण्हा! एयं भूयं वा भव्वं वा भविस्सइ वा जण्णं वासुदेवा चइत्ता हिरण्णं जाव पव्वइस्संति।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ 'न एयं भूयं वा जाव[4] पव्वइस्संति?

'कण्हाइ!' अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"एवं खलु कण्हा! सव्वे वि य णं वासुदेवा पुव्वभवे निदाणकडा से एतेणट्ठेणं कण्हा! एवं वुच्चइ न एयं भूयं जाव[5] पव्वइस्संति।

अरिहन्त अरिष्टनेमि से द्वारका नगरी के विनाश का कारण सुन-समझकर श्रीकृष्ण वासुदेव के मन मे ऐसा विचार चिन्तन, प्रार्थित एव मनोगत सकल्प उत्पन्न हुआ कि—वे जालि, मयालि, उवयालि, पुरिससेन, वीरसेन, प्रद्युम्न, शाम्ब, अनिरुद्ध, दृढनेमि और सत्यनेमि प्रभृति कुमार धन्य हैं जो हिरण्यादि [सपदा और धन, सैन्य, वाहन, कोष, कोष्ठागार, पुर, अन्त:पुर आदि परिजन छोड़कर तथा बहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कासा, दूष्य-वस्त्र, मणि, मोती, संख, सिला, मूंगा, लालरत्न आदि सारभूत द्रव्य आदि] देयभाग देकर, नेमिनाथ प्रभु के पास मुंडित होकर अगार को त्यागकर अनगार रूप मे प्रव्रजित हो गये है। मैं अधन्य हू, अकृत-पुण्य हूं कि राज्य, [कोष, कोष्ठागार, सैन्य, वाहन, नगर] अन्त:पुर और मनुष्य सबधी कामभोगों मे मूर्छित हूं, इन्हे त्यागकर भगवान् नेमिनाथ के पास मुंडित होकर अनगार रूप मे प्रव्रजित होने मे असमर्थ हू।

भगवान् नेमिनाथ प्रभु ने अपने ज्ञान-बल से कृष्ण वासुदेव के मनमे आये इन विचारों को जानकर आर्त्तध्यान मे डूबे हुए कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—"निश्चय ही हे कृष्ण! तुम्हारे मन मे ऐसा विचार उत्पन्न हुआ—वे जालि, मयालि आदि कुमार धन्य है जिन्होने धन वैभव एव स्वजनों को त्यागकर मुनिव्रत ग्रहण किया और मैं अधन्य हू, अकृतपुण्य हू जो राज्य अन्त:पुर और मनुष्य सबधी काम-भोगों मे गृद्ध हू। मैं प्रभु के पास प्रव्रज्या नही ले सकता। हे कृष्ण! क्या यह बात सही है?"

श्रीकृष्ण ने कहा—"हां भगवन्! आपने जो कहा वह सभी यथार्थ है।"

प्रभु ने फिर कहा—"तो हे कृष्ण! ऐसा कभी हुआ नही, होता नही और होगा भी नही कि वासुदेव अपने भव में धन-धान्य-स्वर्ण आदि सपत्ति छोड़कर मुनिव्रत ले लें। वासुदेव दीक्षा लेते नही, ली नही एव भविष्य मे कभी लेगे भी नही।"

---

३. ४. ५. ६—इसी सूत्र मे ऊपर पाठ आ चुका है।

श्रीकृष्ण के तीर्थंकर होने की भविष्यवाणी

४—तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमि एवं वयासी—

"अहं णं भंते ! इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिस्सामि ? कहिं उववज्जिस्सामि ?

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"एवं खलु कण्हा ! तुमं बारवईए नयरीए सुरग्गि-दीवायण-कोव-निदड्ढाए अम्मापिइ-नि
विप्पहूणे रामेण बलदेवेण सद्धि दाहिणवेयालि अभिमुहे जुहिट्ठिल्लपामोक्खाणं पंचण्हं पंडवाणं पंडुर
पुत्ताणं पासं पंडुमहुरं संपत्थिए कोसंबवणकाणणे नग्गोहवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टए पीयव
पच्छाइय-सरीरे जराकुमारेणं तिक्खेणं कोदंड-विप्पमुक्केणं उसुणा वामे पादे विद्धे समाणे कालम
कालं किच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए उज्जलिए नरए नेरइयत्ताए उववज्जिहिसि।"

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म ओहय जाव
झियाइ।

कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—"मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयमण
संकप्पे जाव[1] झियाह। एवं खलु तुमं देवाणुप्पिया ! तच्चाओ पुढवीओ उज्जलियाओ नरयाओ
अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमेसाए उस्सप्पिणीए पुंडेसु जणवएसु सयदुवा
नयरे बारसमे अममे नामं अरहा भविस्ससि। तत्थ तुमं बहूइं वासाइं केवलिपरियागं पाउणेत्त
सिज्झिहिसि बुज्झिहिसि मुच्चिहिसि परिनिव्वाहिसि सव्वदुक्खाणं अंतं काहिसि।

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ
अप्फोडेइ, अप्फोडेत्ता वग्गइ, वग्गित्ता तिवइं छिदइ, छिदित्ता सीहणायं करेइ, करेत्ता अरहं अरिट्ठणेमि
वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव आभिसेक्कं हत्थि दुरूहइ, दुरूहित्ता जेणेव बारवई नयरी, जेणेव
सए गिहे तेणेव उवागए। आभिसेयहत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव बाहिरिया
उवट्ठाणसाला जेणेव सए सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे
निसीयइ, निसीइत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—

तब कृष्ण वासुदेव अरिहंत अरिष्टनेमि को इस प्रकार बोले—

"हे भगवन् ! यहाँ से काल के समय काल कर मै कहाँ जाऊँगा, कहा उत्पन्न होऊगा ?"

इसके उत्तर मे अरिष्टनेमि भगवान् ने कहा—

हे कृष्ण ! तुम सुरा, अग्नि और द्वैपायन के कोप के कारण इस द्वारका नगरी के जल कर नष्ट हो जाने पर और अपने माता-पिता एव स्वजनो का वियोग हो जाने पर राम बलदेव के साथ दक्षिणी समुद्र के तट की ओर पाण्डुराजा के पुत्र युधिष्ठिर आदि पाचो पाडवो के समीप पाण्डु मथुरा की ओर जाओगे। रास्ते मे विश्राम लेने के लिये कौशाम्ब वन-उद्यान मे अत्यन्त विशाल एक वटवृक्ष के नीचे, पृथ्वीशिलापट्ट पर पीताम्बर ओढकर तुम सो जाओगे। उस समय मृग के भ्रम मे जराकुमार द्वारा चलाया हुआ तीक्ष्ण तीर तुम्हारे बाएं पैर मे लगेगा। इस तीक्ष्ण तीर से विद्ध होकर तुम काल के समय काल करके वालुकाप्रभा नामक तीसरी पृथ्वी मे जन्म लोगे। प्रभु के श्रीमुख से

१. २. देखिये वर्ग ३, सूत्र १२

को दोहरा कर पुनः मुझे सूचित करो।" कृष्ण का यह आदेश पाकर उन आज्ञाकारी राजपुरुषों ने वैसी ही घोषणा दो-तीन बार करके लौटकर इसकी सूचना श्रीकृष्ण को दी।

विवेचन - पिछले सूत्रों में श्रीकृष्ण वासुदेव भगवान् अरिष्टनेमि से अपने मृत्यु-वृत्तान्त और नूतन जन्म कहाँ किस स्थिति में होगा, इस सम्बन्ध की जिज्ञासा का समाधान प्राप्त करते हैं, तत्पश्चात् धार्मिक घोषणा करवाते हैं। उनकी इस जिज्ञासा के समाधान में भगवान् अरिष्टनेमि उनके तृतीय पृथ्वी में उत्पन्न होने और फिर भावी तीर्थंकर चौबीसी में १२ वें अमम नामके तीर्थंकर होने का भविष्य प्रकट किया है।

कृष्ण को कृष्ण वासुदेव कहा जाता है। वासुदेव शब्द का व्याकरण के आधार पर अर्थ होता है—"वसुदेवस्य अपत्यं पुमान् वासुदेवः।" वसुदेव के पुत्र को वासुदेव कहते हैं। कृष्ण के पिता का नाम वसुदेव था, अतः इनको वासुदेव कहते हैं। वासुदेव शब्द सामान्य रूप से कृष्ण का वाचक है—कृष्ण का दूसरा नाम है, परन्तु वासुदेव का उक्त अर्थ मान्य होने पर भी यह शब्द जैन-दर्शन का पारिभाषिक शब्द बन गया है। अतएव सभी अर्धचक्रवर्ती वासुदेव शब्द से कहे जाते हैं। जैन-परम्परा में वासुदेव नौ कहे गए हैं—१ त्रिपृष्ठ, २ द्विपृष्ठ, ३ स्वयंभू, ४ पुरुषोत्तम, ५. पुरुषसिंह, ६ पुरुष-पुण्डरीक, ७ दत्त, ८ नारायण (लक्ष्मण), ९ कृष्ण। इनमें कृष्ण का अंतिम स्थान है। वासुदेव का पारिभाषिक अर्थ है—जो सात रत्नों, छह खंडों में से तीन खंडों का अधिपति हो तथा जो अनेकविध ऋद्धियों से सम्पन्न हो। जैन-दृष्टि से वासुदेव प्रतिवासुदेव को जीतकर एवं मारकर तीन खंड पर राज्य किया करते हैं। इसके अतिरिक्त जैन परम्परा ने २८ लब्धियों में से वासुदेव भी एक लब्धि मानी है। तीन खंड तथा सात रत्नों के स्वामी वासुदेव कहलाते हैं, इस पद का प्राप्त होना वासुदेव लब्धि है। वासुदेव में महान् बल होता है। इस बल का उपमा द्वारा वर्णन करते हुए जैनाचार्य कहते हैं—कूप के किनारे बैठे हुए और भोजन करते हुए वासुदेव को जंजीरों से बांध कर यदि चतुरंगिणी सेना सहित सोलह हजार राजा मिलकर खींचने लगें तो भी वे उन्हें खींच नहीं सकते, किन्तु उसी जंजीर को बाएं हाथ में पकड़ कर वासुदेव अपनी ओर उन्हें आसानी से खींच सकता है।

जैन आगमों में जिन कृष्ण का उल्लेख है वे ऐसे ही वासुदेव हैं, वासुदेव-लब्धि से सम्पन्न हैं। अन्तगडसूत्र में एक वासुदेव कृष्ण का वर्णन किया है। सनातन-धर्मियों के साहित्य में वासुदेव शब्द की जैन-शास्त्र सम्मत व्याख्या देखने में नहीं आती। वैदिक साहित्य में वासुदेव पदविशेष या लब्धि-विशेष है ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता।

अन्तगड सूत्र तथा अन्य आगमों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वासुदेव कृष्ण भगवान् अरिष्ट-नेमि के अनन्य श्रद्धालु भक्त थे, उपासक थे। यही कारण है कि भगवान् के द्वारका में पधारने पर वे बड़ी सजधज के साथ दर्शनार्थ उनकी सेवा में उपस्थित होते हैं, अपने परिवार को साथ ले जाते हैं, उनकी धर्मदेशना सुनते हैं। भगवान् से द्वारकादाह की बात सुनकर स्वयं भगवान् के चरणों में दीक्षित न हो सकने के कारण आकुल होते हैं। जालिकुमार आदि राजकुमारों के दीक्षित होकर आत्म-कल्याणोन्मुख होने में उनकी प्रशंसा करते हैं। इन सब बातों से प्रमाणित होता है कि वासुदेव कृष्ण भगवान् अरिष्टनेमि के अनुरागी थे। उनके मार्ग पर चलनेवालों को सहयोग देते थे, क्षमता न होने पर भी उस पर स्वयं चलने की अभिलाषा रखते थे। संक्षेप में कहा जाय तो कृष्ण महाराज जैन धर्मानुरागी थे।

लिया । वासुदेव कृष्ण ने आग शान्त करने के अनेकों यत्न किए, पर कर्मों का ऐसा प्रकोप चल रहा था कि आग पर डाला जानेवाला पानी तेल का काम कर रहा था । पानी डालने से आग शान्त होती है, पर उस समय ज्यों-ज्यों पानी डाला जाता था त्यों-त्यों अग्नि और अधिक भड़कती थी । अग्नि की भीषण ज्वालाएँ मानों गगन को भी भस्म करने का यत्न कर रही थी । कृष्ण वासुदेव बलराम, सब निराश थे, इनके देखते देखते द्वारका जल गई, वे उसे बचा नहीं सके ।

द्वारका के दग्ध हो जाने पर कृष्ण वासुदेव और बलराम वहां से जाने की तैयारी करने लगे । इसी बात को सूत्रकार ने "सुरदीवायणकोवनिदड्ढाए" इस पद से अभिव्यक्त किया है ।

"अम्मा-पिइ-नियग-विप्पहूणे"—अम्बापितृ-निजकविप्रहीणः—मातृपितृभ्या स्वजनेभ्यश्च विहीन —अर्थात् माता-पिता और अपने सम्बन्धियों से रहित । कथाकारों का कहना है कि जब द्वारका नगरी जल रही थी तब कृष्ण वासुदेव और उनके बड़े भाई बलराम दोनों आग बुझाने की चेष्टा कर रहे थे, पर जब ये सफल नही हुए तब अपने महलों में पहुंचे और अपने माता-पिता को बचाने का प्रयत्न करने लगे । बड़ी कठिनाई से माता-पिता को महल में से निकालने में सफल हुए । इनका विचार था कि माता-पिता को रथ पर बैठाकर किसी सुरक्षित जगह पर पहुंचा दिया जाए । अपने विचार की पूर्ति के लिये वासुदेव श्रीकृष्ण जब अश्वशाला में पहुँचे तो देखते है, अश्वशाला जलकर नष्ट हो चुकी है । वे वहां से चले, रथशाला में आए । रथशाला को आग लगी हुई थी, किन्तु एक रथ उन्हे सुरक्षित दिखाई दिया । वे तत्काल उसी को बाहर ले आये, उस पर माता-पिता को बैठाया । घोड़ों के स्थान पर दोनो भाई जुत गए पर जैसे ही सिंहद्वार को पार करने लगे और रथ का जूआ और दोनों भाई द्वार से बाहर निकले ही थे कि तत्काल द्वार का ऊपरी भाग टूट पड़ा और माता-पिता उसी के नीचे दब गए । उनका देहान्त हो गया । वासुदेव कृष्ण तथा बलराम से यह मार्मिक भयंकर दृश्य देखा नहीं गया । वे माता-पिता के वियोग से अधीर हो उठे । जैसे-तैसे उन्होंने अपने मन को संभाला, माता पिता तथा अन्य सम्बन्धियों के वियोग से उत्पन्न महान संताप को धैर्यपूर्वक सहन किया । माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धियों की इसी विहीनता को सूत्रकार ने "अम्मापिइ-नियग-विप्पहूणे" इस पद से समुचित किया है ।

"रामेण बलदेवेण सद्धि"—का अर्थ है—राम बलदेव के साथ । महाराज वसुदेव की एक रानी का नाम रोहिणी था । रोहिणी ने एक पुण्यवान् तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया । वह परम अभिराम सुन्दर था, इसलिए उसका नाम "राम" रखा गया । आगे चलकर अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी होने के कारण राम के साथ 'बल' विशेषण और जुड गया और वे राम, बलराम, बलभद्र और बल आदि अनेक नामों से प्रसिद्ध हो गये । जैनशास्त्रों के अनुसार बलदेव एक पद विशेष भी है । प्रत्येक वासुदेव के बड़े भाई बलदेव कहलाते है, ये स्वर्ग या मोक्षगामी होते है । बलराम नौवें बलदेव थे । बलदेव और वासुदेव का प्रेम अनुपम और अद्वितीय होता है । महाराज कृष्ण के बड़े भाई बलदेव राम को ही सूत्रकार ने "रामेण बलदेवेण" इन पदों से व्यक्त किया है ।

"दाहिणवेलाए अभिमुहे जुहिट्ठिल्लपामोक्खाणं", "पंचण्हं पंडवाणं पंडुरायपुत्ताणं पासं पंडुमहुरं संपत्थिए" का अर्थ है—दक्षिणसमुद्र के किनारे पांडुराजा के पुत्र युधिष्ठिर आदि पांचों पांडवों के पास पाण्डु मथुरा की ओर चल दिये ।

द्वारका नगरी के दग्ध हो जाने पर कृष्ण बड़े चिन्तित थे । उन्होंने बलराम से कहा—भैया

चाहिए था। गोद्रध्यान अपने यौवन पर आ गया और उसी गोद्रध्यानपूर्ण स्थिति में श्रीकृष्ण का देहान्त हो गया।

"तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए उज्जलिए नरए"—तृतीयस्या वालुकाप्रभाया पृथिव्या मुज्ज्वलिते नरके—अर्थात वालुकाप्रभानामक तीसरी पृथ्वी के उज्ज्वलित नरक में।

जैन—दृष्टि से यह जगत् ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक इन तीन लोकों में विभक्त है। अधोलोक में सात नरक है। अधोलोक के जिन स्थानों में पैदा होकर जीव अपने पापों का फल भोगते है, वे स्थान नरक कहलाते है। ये सात पृथ्वियों में विभक्त हैं जिनके नाम हैं—धम्मा, वंसा, शैला, अजना, रिट्ठा, मघा तथा माघवई। इनके—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और महातम प्रभा ये सात गोत्र है।

शब्दार्थ से सम्बन्ध न रखने वाली सज्ञा को 'नाम' कहते है और शब्दार्थ का ध्यान रख कर किसी वस्तु को जो नाम दिया जाता है वह 'गोत्र' कहलाता है। वालुकाप्रभा तीसरी भूमि है। वालु-रेत अधिक होने से इसका नाम वालुकाप्रभा है। क्षेत्रस्वभाव से इसमें उष्ण वेदना होती है। यहा की भूमि जलते हुए अगारो से भी अधिक तप्त है।

कृष्ण वासुदेव वालुकाप्रभानामक तीसरी पृथ्वी में पैदा हुए। उज्ज्वलित शब्द के दो अर्थ होते है—पहला तीसरी भूमि का सातवां नरकेन्द्रक-नरकस्थान विशेष और दूसरा भीषण-भयकर। उज्ज्वलित शब्द नरक का विशेषण है।

"उस्सप्पिणीए"—उत्सर्पिण्याम्—अर्थात् उत्सर्पिणीकाल मे। जैन शास्त्रकारों ने काल को दो विभागों में विभक्त किया है, एक का नाम अवसर्पिणी और दूसरे का उत्सर्पिणी है। जिस काल में जीवों के सहनन (अस्थियों की रचनाविशेष), सस्थान, क्रमशः हीन होते चले जाए, आयु और अवगहना घटती चली जाए, वह काल अवसर्पिणी काल कहलाता है। इस काल में पुद्गलों के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श हीन होते चले जाते है। शुभ भाव घटते है, अशुभ भाव बढते है। यह काल दस कोड़ा-कोडी सागरोपम का है।

इसके विपरीत जिस काल मे जीवो के सहनन आदि क्रमशः अधिकाधिक शुभ होते चले जाते है, आयु और अवगाहना बढती जाती है, वह उत्सर्पिणी काल है। पुद्गलो के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श भी इस काल में क्रमशः शुभ होते जाते हैं। यह काल भी दस कोडा-कोड़ी सागरोपम का है।

भगवान् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से कहा—कृष्ण! आने वाले उत्सर्पिणीकाल मे पुण्ड्र देश के शतद्वार नगर में अमम नाम के बारहवें तीर्थंकर होओगे।

प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम पद मे भारतवर्ष मे साढे २५ देशो को आर्य माना गया है। आर्य देश मे ही अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव की उत्पत्ति बताई गई है। यहा प्रश्न उपस्थित होता है कि जिन साढे २५ देशो के नाम शास्त्रो मे बतलाए गए है उनमे पुण्ड्र देश का नाम देखने को नही मिलता, ऐसी दशा मे उसको आर्यदेश कैसे कह सकते है? भगवान् अरिष्टनेमि के कथनानुसार वहा कृष्ण वासुदेव बारहवे तीर्थंकर बनेगे, तो पुण्ड्र देश ...

इसके बाद वह पद्मावती महारानी भगवान् अरिष्टनेमि से धर्मोपदेश सुनकर एवं उसे हृदय में धारण करके प्रसन्न और सन्तुष्ट हुई, उसका हृदय प्रफुल्लित हो उठा। यावत् वह अरिहंत नेमिनाथ को वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार बोली—

भंते ! निर्ग्रन्थप्रवचन पर मैं श्रद्धा करती हूं। जैसा आप कहते हैं वह वैसा ही है। आपका धर्मोपदेश यथार्थ है। हे भगवन् ! मैं कृष्ण वासुदेव की आज्ञा लेकर फिर देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूं।

प्रभु ने कहा—'जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो। हे देवानुप्रिये ! धर्म-कार्य में विलम्ब मत करो।'

नेमिनाथ प्रभु के ऐसा कहने के बाद पद्मावती देवी धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर आरूढ होकर द्वारका नगरी में अपने प्रासाद में आकर धार्मिक रथ से नीचे उतरी और जहां पर कृष्ण वासुदेव थे वहां आकर अपने दोनों हाथ जोड़कर सिर झुकाकर, मस्तक पर अंजलि कर कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोली—

'देवानुप्रिय ! आपकी आज्ञा हो तो मैं अरिहंत नेमिनाथ के पास मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूं।'

कृष्ण ने कहा—'देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो।'

तब कृष्ण वासुदेव ने अपने आज्ञाकारी पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार आदेश दिया—

देवानुप्रियो ! शीघ्र ही महारानी पद्मावती के दीक्षामहोत्सव की विशाल तैयारी करो, और तैयारी हो जाने की मुझे सूचना दो। तब आज्ञाकारी पुरुषों ने वैसा ही किया और दीक्षा-महोत्सव की तैयारी की सूचना दी।

७—तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमावइं देविं पट्टयं दुरुहेइ, अट्ठसएणं सोवण्णकलसाणं जाव [एवं रुप्पकलसाणं, सुवण्णरुप्पकलसाणं, मणिकलसाणं, सुवण्णमणिकलसाणं, रुप्पमणिकलसाणं, सुवण्णरुप्पमणिकलसाणं, भोमेज्जकलसाणं सव्वोदएहिं, सव्वमट्टियाहिं सव्वपुप्फेहिं सव्वगंधेहिं सव्वमल्लेहिं सव्वोसहीहि य, सिद्धत्थएहि य, सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं जाव [सव्वसमुदएणं सव्वादरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेण सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सव्वतुडिय-सद्द-सण्णिणाएणं महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेणं महया समुदएणं महया वरतुडिय-जमगसमगप्पवाइएण संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरय-मुइंग-दुंदुभिघोसरवेणं महया महया] महाणिक्खमणाभिसेएणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता सव्वालंकारविभूसियं करेइ, करेत्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सिबियं दुरुहावेइ, दुरुहावेत्ता बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव रेवयए पव्वए, जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयं ठवेइ "पउमावइं देविं" सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

एस णं भंते ! मम अग्गमहिसी पउमावई नामं देवी इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणाभिरामा जाव [जीवियऊसासा हिययाणंदजणिया, उंबरपुप्फं पिव दुल्लहा सवणयाए] किमंग पुण पासणयाए ? तण्णं अहं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्खं दलयामि। पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्खं।

तए ण सा पउमावई अज्जा बहुपडिपुण्णाइं वीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं भूसेइ, भूसेत्ता सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव [मुंडभावे, केसलोए, बंभचेरवासे, अण्हाणगं, अच्छत्तयं अणुवाहणयं भूमिसेज्जाओ, फलगसेज्जाओ, परघरप्पवेसे, लद्धावलद्धाइं माणावमाणाइं, परेसिं हीलणाओ, निंदणाओ, खिंसणाओ, तालणाओ, गरहणाओ, उच्चावया विरूवरूवा बावीसं परीसहोवसग्गा-गामकंटगा अहियासिज्जंति] तमट्ठं आराहेइ, चरिमुस्सासेहिं सिद्धा।

तब उस पद्मावती देवी ने ईशान-कोण में जाकर स्वयं अपने हाथों से अपने शरीर पर धारण किए हुए सभी आभूषण एवं अलंकार उतारे और स्वयं ही अपने केशों का पंचमुष्टिक लोच किया। फिर भगवान् नेमिनाथ के पास आकर वन्दना की। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—"भगवन्! यह संसार जन्म, जरा, मरण आदि दुःख रूपी आग में जल रहा है। यावत् मुझे दीक्षा दें।"

इसके बाद भगवान् नेमिनाथ ने पद्मावती देवी को स्वयमेव प्रव्रज्या दी, और स्वयं ही यक्षिणी आर्या को शिष्या के रूप में प्रदान की। तब यक्षिणी आर्या ने पद्मावती को धर्मशिक्षा दी, यावत् इस प्रकार संयमपूर्वक प्रवृत्ति करनी चाहिए। तब वह पद्मावती आर्या ईर्यासमिति, [भाषासमिति, एषणासमिति, आदान-भाण्ड-मात्र-निक्षेपणा समिति, उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-परिष्ठापनिका समिति, मनःसमिति, वचनसमिति, काय-समिति इन आठ समितियों और मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति से सम्पन्न, इन्द्रियों का गोपन करने वाली गुप्तेन्द्रिया—कछुए की भांति इन्द्रियों को वश में करने वाली] ब्रह्मचारिणी आर्या हो गई।

तदनन्तर उस पद्मावती आर्या ने यक्षिणी आर्या से सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, बहुत से उपवास—बेले-तेले-चोले-पचोले-मास और अर्धमास-खमण आदि विविध तपस्या से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

इस तरह पद्मावती आर्या ने पूरे बीस वर्ष तक चारित्रधर्म का पालन किया और अन्त में एक मास की संलेखना से आत्मा को भावित कर, साठ भक्त अनशन पूर्ण कर, जिस अर्थ-प्रयोजन के लिये नग्नभाव, [मुण्डभाव, केशलोच, ब्रह्मचर्यवास, अस्नानक, अछत्रक, अनुपाहनक, भूमिशय्या, फलकशय्या, परगृहप्रवेश, लाभालाभ, मानापमान, हीलना, अवहेलना, निन्दा, खिंसना, ताडना, गर्हा, विविध प्रकार के ऊंच-नीचे २२ परिषह तथा उपसर्ग सहन किये जाते है उस अर्थ का आराधन कर अन्तिम श्वास में सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गई।

२–८ अध्ययन

गौरी आदि

१—तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नयरी। रेवयए पव्वए। उज्जाणे नंदणवणे। तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे वासुदेवे। तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स गोरी देवी, वण्णओ। अरहा समोसढे। कण्हे निग्गए। गोरी जहा पउमावई तहा निग्गया। धम्मकहा। परिसा पडिगया। कण्हे वि। तए णं सा गोरी जहा पउमावई तहा निक्खंता जाव[1] सिद्धा।

१. वर्ग ५, सूत्र ५, ६.

छट्ठो वग्गो—षष्ठ वर्ग

१—२ अध्ययन

मकाई और किंकम

१—जइ ण भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पंच वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, छट्ठस्स णं भंते ! वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं छट् वग्गस्स सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी गाहा

(१) मकाइ (२) किंकमे चेव, (३) मोग्गरपाणी य (४) कासवे।
(५) खेमए (६) धिइहरे, चेव (७) केलासे (८) हरिचंदणे ॥१॥
(९) वारत्त (१०) सुदंसण (११) पुण्णभद्द तह (१२) सुमणभद्द (१३) सुपइट्ठे।
(१४) मेहे (१५) अइमुत्त (१६) अलक्के, अज्झयणाणं तु सोलसयं ॥२॥

जइ सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अ पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएण रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया तत्थ णं मकाई नामं गाहावई परिवसइ-अड्ढे जाव[1] अपरिभूए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे गुणसिलए जाव [चेइए अहापडिरूवं उग्ग उग्गिण्हइ, अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाण भावेमाणे] विहरइ। परिस निग्गया। तए णं से मकाई गाहावई इमोसे कहाए। लद्धट्ठे जहा पण्णत्तोए गंगदत्ते तहेव इमो वि जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठवेत्ता पुरिससहस्सवाहिणोए सीयाए निक्खते जाव[2] अणगारे जाए-इरियासमिए जाव[3] गुत्तबंभयारी।

तए णं से मकाई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइय-माइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। सेसं जहा खंदयस्स गुणरयणं तवोकम्मं सोलसवासाइं परियाओ। तहेव विउले सिद्धे।

किंकमे वि एवं चेव जाव[4] विउले सिद्धे।

---

१. वर्ग ३, सूत्र १.
२-३. वर्ग १, सूत्र १८.

तृतीय अध्ययन

मुद्गरपाणि

अर्जुन मालाकार

२—तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसीलए चेइए । सेणिए राया । चेलणा देवी । तत्थ णं रायगिहे नयरे अज्जुणए नामं मालागारे परिवसइ-अड्ढे जाव[1] अपरिभूए । तस्स णं अज्जुणयस्स मालायारस्स बंधुमई नामं भारिया होत्था-सूमालपाणिपाया । तस्स णं अज्जुणयस्स मालायारस्स रायगिहस्स नयरस्स बहिया, एत्थ णं महं एगे पुप्फारामे होत्था-किण्हे जाव [किण्होभासे, नीले नीलोभासे, हरिए हरिओभासे, सीए सीओभासे, णिद्धे णिद्धोभासे, तिव्वे तिव्वोभासे, किण्हे किण्हच्छाए, नीले नीलच्छाए, हरिए हरियच्छाए, सीए सीयच्छाए, णिद्धे णिद्धच्छाए, तिव्वे तिव्वच्छाए, घण-कडिय-कडिच्छाए रम्मे महामेह] निउरंबभूए दसद्धवण्णकुसुमकुसुमिए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ।

तस्स णं पुप्फारामस्स अदूरसामंते, एत्थ णं अज्जुणयस्स मालायारस्स अज्जय-पज्जय-पिइपज्जयागए अणेगकुलपुरिस-परंपरागए मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था-पोराणे दिव्वे सच्चे जहा पुण्णभद्दे । तत्थ णं मोग्गरपाणिस्स पडिमा एगं महं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं गहाय चिट्ठइ ।

तए णं से अज्जुणए मालागारे बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणि-जक्खभत्ते यावि होत्था । कल्लाकल्लिं पच्छियपिडगाइं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ नयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुप्फुच्चयं करेइ, करेत्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय, जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, करेत्ता जाणुपायपडिए पणामं करेइ, तओ पच्छा रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ ।

उस काल उस समय में राजगृह नाम का नगर था। वहाँ गुणशीलकनामक उद्यान था। उस नगर में राजा श्रेणिक राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम चेलना था। उस राजगृह नगर में 'अर्जुन' नाम का एक माली रहता था। उसकी पत्नी का नाम 'बन्धुमती' था, जो अत्यन्त सुन्दर एवं सुकुमार थी। उस अर्जुनमाली का राजगृह नगर के बाहर एक बड़ा पुष्पाराम (फूलों का बगीचा) था। वह पुष्पोद्यान कहीं कृष्ण वर्ण का था, [श्याम कान्तिवाला था, कहीं मोर के गले की तरह नील एवं नील कान्तिवाला था, कहीं हरित एवं हरित कान्तिवाला था। स्पर्श की दृष्टि से कहीं शीत और शीत कान्तिवाला, कहीं स्निग्ध एवं स्निग्ध कान्तिवाला, वर्णादि गुणों की अधिकता के कारण तीव्र एवं तीव्र छायावाला, शाखाओं के आपस में सघन मिलने से गहरी छायावाला, रम्य तथा महामेघों के] समुदाय की तरह प्रतीत हो रहा था। उसमें पाँचों वर्णों के फूल खिले हुए थे। वह बगीचा इस भाँति हृदय को प्रसन्न एवं प्रफुल्लित करने वाला अतिशय दर्शनीय था।

उस पुष्पाराम अर्थात् फूलवाड़ी के समीप ही मुद्गरपाणि नामक यक्ष का यक्षायतन था, जो उस अर्जुनमाली के पुरखाओं—बाप-दादों से चली आई कुलपरम्परा से सम्बन्धित था। वह 'पूर्णभद्र' चैत्य के समान पुराना, दिव्य एवं सत्य प्रभाव वाला था। उसमें 'मुद्गरपाणि' नामक यक्ष की एक प्रतिमा थी, जिसके हाथ में एक हजार पल-परिमाण (वर्तमान तोल के अनुसार लगभग ६२॥ सेर अनुसार लगभग ५८ किलो) भारवाला लोहे का एक मुद्गर था।

---

१. वर्ग १, सूत्र १.

तृतीय अध्ययन

मुद्गरपाणि

अर्जुन मालाकार

२—तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसीलए चेइए। सेणिए राया। चेल
तत्थ णं रायगिहे नयरे अज्जुणए नामं मालागारे परिवसइ-अड्ढे जाव[1] अपरिभूए।
अज्जुणयस्स मालायारस्स बंधुमई नामं भारिया होत्था-सूमालपाणिपाया। तस्स णं अज
मालायारस्स रायगिहस्स नयरस्स बहिया, एत्थं णं महं एगे पुप्फारामे होत्था-किण्हे जाव [कि
नीले नीलोभासे, हरिए हरिओभासे, सीए सीओभासे, णिद्धे णिद्धोभासे, तिव्वे तिव्वोभासे
किण्हच्छाए, नीले नीलच्छाए, हरिए हरियच्छाए, सीए सीयच्छाए, णिद्धे णिद्धच्छाए
तिव्वच्छाए, घण-कडिय-कडिच्छाए रम्मे महामेह] निउरंबभूए दसद्धवण्णकुसुमकुसुमिए
हरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

तस्स णं पुप्फारामस्स अदूरसामंते, एत्थ णं अज्जुणयस्स मालायारस्स अज्जय-पज्जय-पि
यागए अणेगकुलपुरिस-परंपरागए मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था-पोराणे दिव्वे
जहा पुण्णभद्दे। तत्थ णं मोग्गरपाणिस्स पडिमा एगं महं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं
चिट्ठइ।

तए णं से अज्जुणए मालागारे बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणि-जक्खभत्ते यावि हो
कल्लाकल्लिं पच्छियपिडगाइं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ नयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्ख
जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुप्फुच्चयं करेइ, करेत्ता अग्गाइं वराइं पु
गहाय, जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मोग्गरपा
जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, करेत्ता जाणुपायपडिए पणामं करेइ, तओ पच्छा रायमग्गंसि
वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ।

उस काल उस समय में राजगृह नाम का नगर था। वहाँ गुणशीलक नामक उद्यान था।
नगर में राजा श्रेणिक राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम चेलना था। उस राजगृह नग
'अर्जुन' नाम का एक माली रहता था। उसकी पत्नी का नाम 'बन्धुमती' था, जो अत्यन्त सुन्दर
सुकुमार थी। उस अर्जुनमाली का राजगृह नगर के बाहर एक बड़ा पुष्पाराम (फूलों का बगी
था। वह पुष्पोद्यान कहीं कृष्ण वर्ण का था, [श्याम कान्तिवाला था, कहीं मोर के गले की तरह
एवं नील कान्तिवाला था, कहीं हरित एवं हरित कान्तिवाला था। स्पर्श की दृष्टि से कहीं शीत
शीत कान्तिवाला, कहीं स्निग्ध एवं स्निग्ध कान्तिवाला, वर्णादि गुणों की प्रकर्षता के कारण
एवं तीव्र छायावाला, … के आपस में सघन मिलने से गहरी छायावाला, रम्य तथा महा
के] समुदाय की तरह प्रतीत हो रहा था। उसमें पाँचों वर्णों के फूल खिले हुए थे। वह बगीचा
… हृदय को प्रसन्न एवं आह्लादित करने वाला अतिशय दर्शनीय था।

उस पुष्पाराम अर्थात् फूलवाड़ी के समीप ही मुद्गरपाणि नामक यक्ष का यक्षायतन था,
उस अर्जुनमाली के पुरखाओं—बाप-दादों से चली आई कुलपरम्परा से सम्बन्धित था। वह पूर्ण
[illegible] के समान पुराना, दिव्य एवं सत्य प्रभाव वाला था। उसमें 'मुद्गरपाणि' नामक यक्ष की
[illegible] जिसके हाथ में एक हजार पल-परिमाण (वर्तमान तोल के अनुसार लगभग
[illegible] (किलो) भारवाला लोहे का एक मुद्गर था।

१. वर्ग १, सूत्र ९

उस राजगृह नगर मे 'ललिता' नाम की एक गोष्ठी (मित्रमंडली) थी। वह (उसके सदस्य) धन-धान्यादि से सम्पन्न थी तथा वह बहुतों से भी पराभव को प्राप्त नहीं हो पाती थी। किसी समय राजा का कोई अभीष्ट-कार्य संपादन करने के कारण राजा ने उस मित्र-मंडली पर प्रसन्न होकर अभयदान दे दिया था कि वह अपनी इच्छानुसार कोई भी कार्य करने मे स्वतन्त्र है। राज्य की ओर से उसे पूरा सरक्षण था, इस कारण यह गोष्ठी बहुत उच्छृंखल और स्वच्छन्द बन गई।

एक दिन राजगृह नगर में एक उत्सव मनाने की घोषणा हुई। इस पर अर्जुनमाली ने अनुमान किया कि कल इस उत्सव के अवसर पर बहुत अधिक फूलों की माग होगी। इसलिये उस दिन वह प्रात काल मे जल्दी ही उठा और बास की छबड़ी लेकर अपनी पत्नी बन्धुमती के साथ जल्दी घर से निकला। निकलकर नगर में होता हुआ अपनी फुलवाड़ी में पहुचा और अपनी पत्नी के साथ फूलों को चुन-चुन कर एकत्रित करने लगा। उस समय पूर्वोक्त "ललिता" गोष्ठी के छह गोष्ठिक पुरुष मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन मे आकर आमोद-प्रमोद करने लगे।

४—तए णं अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धि पुप्फुच्चयं करेइ, (पत्थियं भरेइ), भरेत्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ। तए णं ते [redacted] गोट्ठिल्ला पुरिसा अज्जुणयं मालागारं बंधुमईए भारियाए सद्धि एज्जमाणं पासंति, पासित्ता अण्णमण्णं एवं वयासी—

"एस णं देवाणुप्पिया! अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धि इहं हव्वमागच्छइ। तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं अज्जुणयं मालागारं अवओडय-बंधणयं करेत्ता बंधुमईए भारियाए सद्धि विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणाणं विहरित्तए," त्ति कट्टु, एयमट्ठं अण्णमण्णस्स पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता कवाडंतरेसु निलुक्कंति, निच्चला, निप्फंदा, तुसिणीया, पच्छण्णा चिट्ठंति। तए णं से अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धि जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, आलोए पणामं करेइ, महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, जण्णुपायपडिए पणामं करेइ। तए णं छ गोट्ठिल्ला पुरिसा दवदवस्स कवाडंतरेहितो निग्गच्छंति निग्गच्छित्ता अज्जुणयं मालागारं गेण्हंति, गेण्हित्ता अवओडय-बंधणं करेंति। बंधुमईए मालागारीए सद्धि विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

उधर अर्जुनमाली अपनी पत्नी बन्धुमती के साथ फूल-संग्रह करके उनमें से कुछ उत्तम फूल छाटकर उनसे नित्य-नियम के अनुसार मुद्गरपाणि यक्ष की पूजा करने के लिये यक्षायतन की ओर चला। उन छह गोष्ठिक पुरुषों ने अर्जुनमाली को बन्धुमती भार्या के साथ यक्षायतन की ओर आते देखा। देखकर परस्पर विचार करके निश्चय किया—"अर्जुनमाली अपनी बन्धुमती भार्या के साथ इधर ही आ रहा है। हम लोगों के लिये यह उत्तम अवसर है कि अर्जुनमाली को तो औंधी मुश्कियों (दोनों हाथों को पीठ पीछे) से बलपूर्वक बाधकर एक ओर पटक दें और बन्धुमती के साथ खूब काम क्रीडा करें।" यह निश्चय करके वे छहों उस यक्षायतन के किवाड़ों के पीछे छिप कर निश्चल खड़े हो गये और उन दोनों के यक्षायतन के भीतर प्रविष्ट होने की श्वास रोककर प्रतीक्षा करने लगे। इधर अर्जुनमाली अपनी बन्धुमती भार्या के साथ यक्षायतन मे प्रविष्ट हुआ और यक्ष पर दृष्टि पड़ते ही उसे प्रनाम किया। फिर चुने हुए उत्तमोत्तम फूल उस पर चढ़ाकर दोनों घुटने भूमि पर टेककर प्रनाम किया। उसी समय शीघ्रता से उन छह गोष्ठिक पुरुषों ने किवाड़ों के पीछे से निकल

है—इस नगर में आए हुए 'उज्जाणे' का अर्थ है उस उद्यान में आए हुए तथा 'अहापडिरूवं' का अर्थ है—साधुओं के योग्य स्थान पर ठहरे हुए।

सुदर्शन को अर्जुन द्वारा उपसर्ग

१०—तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं-वीईवयमाणं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे तं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे-उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं से सुदंसणे समणोवासए मोग्गरपाणिं जक्खं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए अचलिए असंभंते वत्थंतेणं भूमिं पमज्जइ, पमज्जित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"नमोत्थु णं अरहंताणं जाव[1] संपत्ताणं। नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स आइगरस्स तित्थयरस्स जाव संपाविउकामस्स। पुव्विं पि णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, थूलाए मुसावाए, थूलाए अदिण्णादाणे सदारसंतोसे कए जावज्जीवाए, इच्छापरिमाणे कए जावज्जीवाए। तं इदाणिं पि णं तस्सेव अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, मुसावायं अदत्तादाणं मेहुणं परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं कोहं जाव [माणं मायं लोहं पेज्जं दोसं कलहं अब्भक्खाणं पेसुण्णं परपरिवायं अरइरइं मायामोसं] मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि जावज्जीवाए। जइ णं एत्तो उवसग्गाओ मुच्चिस्सामि तो मे कप्पइ पारित्तए। अह णं एत्तो उवसग्गाओ न मुच्चिस्सामि 'तो मे तहा' पच्चक्खाए चेव त्ति कट्टु सागारं पडिमं पडिवज्जइ।

तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे तं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे-उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव उवागए। नो चेव णं संचाएइ सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए।

१०—तब उस मुद्गरपाणि यक्ष ने सुदर्शन श्रमणोपासक को समीप में ही जाते हुए देखा। देखकर वह क्रुद्ध हुआ, रुष्ट हुआ, कुपित हुआ, कोपातिरेक से भीषण बना हुआ, क्रोध की ज्वाला में जलता हुआ, दांत पीसता हुआ वह हजार पल भारवाले लोहे के मुद्गर को घुमाते-घुमाते जहाँ सुदर्शन श्रमणोपासक था, उस ओर आने लगा। उस समय क्रुद्ध मुद्गरपाणि यक्ष को अपनी ओर आता देखकर सुदर्शन श्रमणोपासक मृत्यु की सम्भावना को जानकर भी किंचित् भी भय, त्रास, उद्वेग अथवा क्षोभ को प्राप्त नहीं हुआ। उसका हृदय तनिक भी विचलित अथवा भयाक्रान्त नहीं नहीं हुआ। उसने निर्भय होकर अपने वस्त्र के अंचल से भूमि का प्रमार्जन किया। फिर पूर्व दिशा की ओर मुंह करके बैठ गया! बैठकर बाएं घुटने को ऊंचा किया और दोनों हाथ जोडकर मस्तक पर अंजलिपुट रखा। इसके बाद इस प्रकार बोला—

मैं उन सभी अरिहंत भगवंतों को, जो अतीतकाल में मोक्ष पधार गये हैं, एवं धर्म के आदि-कर्त्ता तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर को जो भविष्य में मोक्ष पधारने वाले हैं, नमस्कार करता हूं।"

1. वर्ग १. सूत्र २.

उपसर्ग-निवारण

११—तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं सव्वओ समंता परिघोलेमाणे परिघोलेमाणे जाहे नो चेव णं संचाएइ सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए, ताहे सुदंसणस्स समणोवासयस्स पुरओ सपक्खि सपडिदिसिं ठिच्चा सुदंसणं समणोवासयं अणिमिसाए दिट्ठीए सुचिरं निरिक्खइ, निरिक्खित्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरं विप्पजहइ,विप्पजहित्ता तं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं गहाय जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

तए णं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं विप्पमुक्के समाणे 'धस' त्ति धरणियलंसि सव्वंगेहिं निवडिए। तए णं से सुदंसणे समणोवासए 'निरुवसग्ग' मिति कट्टु पडिमं पारेइ।

मुद्गरपाणि यक्ष सुदर्शन श्रावक के चारों ओर घूमता रहा और जब उसको अपने तेज से पराजित नहीं कर सका तब सुदर्शन श्रमणोपासक के सामने आकर खड़ा हो गया और अनिमेष दृष्टि से बहुत देर तक उसे देखता रहा। इसके बाद उस मुद्गरपाणि यक्ष ने अर्जुन माली के शरीर को त्याग दिया और उस हजार पल भार वाले लोहमय मुद्गर को लेकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया।

मुद्गरपाणि यक्ष से मुक्त होते ही अर्जुन मालाकार 'धस्' इस प्रकार के शब्द के साथ भूमि पर गिर पड़ा। तब सुदर्शन श्रमणोपासक ने अपने को उपसर्ग रहित हुआ जानकर अपनी प्रतिज्ञा का पारण किया और अपना ध्यान खोला।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में यह दर्शाया गया है कि सेठ सुदर्शन को देखकर अर्जुन माली ने अपना मुद्गर उछाला तो सही पर वह आकाश में अधर ही रह गया। सुदर्शन की आत्म-शक्ति की तेजस्विता के कारण वह किसी भी प्रकार से प्रत्याघात नहीं कर पाया। सूत्रकार ने इस हेतु—"तेजसा समभिपडित्तए" पद का प्रयोग किया है। मुद्गरपाणि यक्ष ने सुदर्शन पर आक्रमण किया, परन्तु उनकी आध्यात्मिक तेजस्विता के कारण आघात नहीं कर पाया। वह स्वयं तेजोविहीन हो गया।

सुदर्शन के असाधारण तेज से पराभूत मुद्गरपाणि यक्ष अर्जुन माली के शरीर में से भाग गया और अर्जुन माली भूमि पर गिर पड़ा। तब सुदर्शन ने "संकट टल गया" यह समझ कर अपना व्रत समाप्त कर दिया।

सुदर्शन और अर्जुन की भगवत्पर्युपासना

१२—तए णं से अज्जुणए मालागारे तत्तो मुहुत्तंतरेणं आसत्थे समाणे उट्ठेइ, उट्ठेत्ता सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी—

"तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! के कहिं वा संपत्थिया ?

तए णं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुणयं मालागारं एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अहं सुदंसणे नामं समणोवासए-अभिगयजीवाजीवे गुणसिलए चेइए समणं भगवं महावीरं वंदए संपत्थिए।"

है भंते ! यही सत्य है भंते ! निःसंदेह ऐसा ही है भंते ! यही इष्ट है भंते ! यही स्वीकृत है भंते ! यही वांछित-गृहीत है भंते ! जैसा कि आप यह कह रहे हैं'—यों अप्रतिकूल बनकर पर्युपासना करना। मानसिकी उपासना अर्थात्—अति संवेग (उत्साह या मुमुक्षु भाव) अपने में उत्पन्न करके, धर्म के अनुराग में तीव्रता से अनुरक्त होना।]

उस समय श्रमण भगवान् महावीर ने सुदर्शन श्रमणोपासक, अर्जुनमाली और उस विशाल सभा के सम्मुख धर्मकथा कही। सुदर्शन धर्मकथा सुनकर अपने घर लौट गया।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि मुद्गरपाणि यक्ष द्वारा होने वाले उपद्रव के समाप्त होने पर सुदर्शन ने अपने आमरण अनशन को समाप्त कर दिया। अनशन समाप्त करने के अनन्तर सेठ सुदर्शन ने बड़ी गंभीरता एवं दूरदर्शिता से काम लिया। वे अर्जुनमाली को मूर्च्छित दशा में देखकर भयभीत नहीं हुए और उन्होंने वहां से जाने का भी प्रयत्न नहीं किया, प्रत्युत वे वहाँ बड़ी शान्ति के साथ बैठे रहे। कारण स्पष्ट है। उनका हृदय दयालु था, सहानुभूतिपूर्ण था। अर्जुनमाली को अचेत दशा में छोड़कर वे जाना नहीं चाहते थे। उनका विचार था कि अर्जुनमाली अब परवशता से उन्मुक्त हो गया है, अतः इसकी देखभाल करना तथा इसका मार्गदर्शन करना मेरा कर्त्तव्य है। इसी कर्तव्यपालन की बुद्धि से उन्होंने वहाँ से प्रस्थान नहीं किया।

अर्जुनमाली अन्तर्मुहूर्त तक बेसुध पड़ा रहा, "मुहुत्तंतरेणं-मुहूर्त्तान्तरेण-स्तोककालेन"—मुहूर्त शब्द का अर्थ है—४८ मिनिट। दो घड़ियों को मुहूर्त कहते हैं और दो घड़ी से न्यून काल को अन्तर्मुहूर्त कहा जाता है। सूत्रकार के कहने का आशय यह है कि अर्जुनमाली के शरीर से जब यक्ष निकल कर चला गया, उसके अनन्तर अर्जुनमाली धड़ाम से भूमितल पर गिर पड़ा और कुछ समय तक बेहोश पड़ा रहा। उसके अनन्तर उसे होश आया।

सचेत होने पर अर्जुनमाली ने सामने उपस्थित सुदर्शन को देख उनका परिचय जानने के साथ कुछ संवाद किया और सेठ सुदर्शन के साथ गुणशिलक उद्यान में भगवान् महावीर के चरणों में पहुँच गया।

अर्जुन की प्रव्रज्या

१३—तए णं से अज्जुणए मालागारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं जाव[1] अब्भुट्ठेमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।'

तए णं से अज्जुणए मालागारे उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जाव[2] विहरइ।

तए णं से अज्जुणए अणगारे जं चेव दिवसं मुंडे जाव[3] पव्वइए तं चेव दिवसं समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं ओगेण्हइ—कप्पइ मे

१-२ वर्ग ३, सूत्र १८. ३ वर्ग ६, सूत्र ३.

अडइ, अडित्ता रायगिहाओ नयराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे जाव [तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूर-सामंते गमणागमणाए पडिक्कमेइ, पडिक्कमेत्ता एसणमणेसणं आलोएइ, आलोएत्ता भत्तपाणं] पडिदंसेइ, पडिदंसेत्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववण्णे बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं तमाहारं आहारेइ। तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया रायगिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

तए [illegible] से अज्जुणए अणगारे तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णे छम्मासे सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेइ, झूसेत्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदेत्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव[1] सिद्धे।

उस समय अर्जुन मुनि को राजगृह नगर में उच्च-नीच-मध्यम कुलों में भिक्षार्थ घूमते हुए देखकर नगर के अनेक नागरिक—स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध इस प्रकार कहते—

"इसने मेरे पिता को मारा है। इसने मेरी माता को मारा है। भाई को मारा है, बहन को मारा है, भार्या को मारा है, पुत्र को मारा है, कन्या को मारा है, पुत्रवधू को मारा है, एवं इसने मेरे अमुक स्वजन संबंधी या परिजन को मारा है। ऐसा कहकर कोई गाली देता, कोई हीलना करता, अनादर करता, निंदा करता, कोई जाति आदि का दोष बताकर गर्हा करता, कोई भय बताकर तर्जना करता और कोई थप्पड़, ईंट, पत्थर, लाठी आदि से ताडना करता।

इस प्रकार उन बहुत से स्त्री-पुरुष, बच्चे, बूढ़े और जवानों से आक्रोश-गाली, [हीलना, अनादर, निंदा, गर्हा सहते हुए], ताडित-तर्जित होते हुए भी वे अर्जुन मुनि उन पर मन से भी द्वेष नहीं करते हुए उनके द्वारा दिये गये सभी परीषहों को समभावपूर्वक सहन करते हुए उन कष्टों को समभाव से झेल लेते एवं निर्जरा का लाभ समझते। सम्यग्ज्ञानपूर्वक उन सभी संकटों को सहन करते, क्षमा करते, तितिक्षा रखते और उन कष्टों को भी लाभ का हेतु मानते हुए राजगृह नगर के छोटे, बड़े एवं मध्यम कुलों में भिक्षा हेतु भ्रमण करते हुए अर्जुन मुनि को कभी भोजन मिलता तो पानी नहीं मिलता और पानी मिलता तो भोजन नहीं मिलता।

वैसी स्थिति में जो भी और जैसा भी अल्प स्वल्प मात्रा में प्रासुक भोजन उन्हें मिलता उसे वे सर्वथा अदीन, अविमन, अकलुष, अमलिन, आकुल-व्याकुलता रहित अखेद-भाव से ग्रहण करते, थकान अनुभव नहीं करते।

इस प्रकार वे भिक्षार्थ भ्रमण करते। भ्रमण करके वे राजगृह नगर से निकलते और गुणशील उद्यान में, जहां श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहां आते और वहां आकर [भगवान् से न अति दूर न अति निकट से उपस्थित होकर गमनागमन सम्बन्धी प्रतिक्रमण करते, भिक्षा में लगे हुए दोषों की आलोचना करते] और फिर भिक्षा में मिले हुए आहार-पानी को प्रभु महावीर को दिखाते। दिखाकर उनकी आज्ञा पाकर मूर्च्छा रहित, गृद्धि रहित, राग रहित और आसक्ति रहित; जिस प्रकार

१. वर्ग ५, सूत्र ६.

'अदीणे' इत्यादि तत्रादीन. शोकाभावात् अविमना न शून्यचित्तः अकलुषो द्वेषवर्जितत्वात् अनाविल जनाकुलो वा निःक्षोभत्वात् अविषादी किं मे जीवितेनेत्यादि चिन्तारहितः, अत एवापरितान्त.—अविश्रान्तो योग —समाधिर्यस्य सः तथा स्वार्थिकेनन्तत्त्वाच्चापरितान्तयोगी ।

इसका अर्थ इस प्रकार है—

मन में किसी प्रकार का शोक न होने से अर्जुन मुनि अदीन-दीनता से रहित थे, समाहित चित्त होने से अविमन थे, द्वेष-रहित होने से मन में किसी प्रकार की कलुषता-मलिनता और आकुलता नहीं थी। क्षोभशून्य होने से मन में किसी प्रकार का विषाद-दुःख नहीं था। 'मेरा इस प्रकार के तिरस्कृत जीवन से क्या प्रयोजन है,' ऐसी ग्लानि उनके मन में नहीं थी, अतएव वह निरन्तर समाधि में लीन थे। समाधि में सतत लगे रहने के कारण ही अर्जुन मुनि को अपरितान्तयोगी कहा गया है। अपरितान्त योग शब्द से स्वार्थ में 'इन' प्रत्यय लगा कर अपरितान्तयोगी शब्द बनता है।

"बिलमिव पण्णगभूएण अप्पाणेणं तमाहारं आहारेइ"—का अर्थ है—जिस प्रकार साँप बिल में प्रवेश करता है, उसी प्रकार आहार को ग्रहण किया गया। इन पदों का अर्थ वृत्तिकार के शब्दों में इस प्रकार है—

"बिलमिव पन्नगभूतेन आत्मना तमाहारमाहारयति—यथा भुजगो बिलस्य पार्श्वभागद्वयमसंस्पृशन् मध्यमार्गेण एवात्मानं बिले प्रवेशयति तथा मुखस्य पार्श्वद्वयस्पर्शरहितमाहारं कण्ठनालाभिमुखं प्रवेश्याऽऽहारयतीति भावः।"

अर्थात् जैसे सर्प बिल के दोनों भागों का स्पर्श किए बिना केवल बिल के मध्यभाग में ही बिल में प्रविष्ट होता है, उसी प्रकार अर्जुन मुनि मुख के दोनों भागों का स्पर्श किए बिना केवल मुख में आहार रख कर गले के नीचे उतार लेते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार बिल में प्रवेश करते समय सर्प अपने अंगों का उससे स्पर्श नहीं करता, बड़े संकोच से उसमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार किसी प्रकार के आस्वाद की अपेक्षा न करते हुए रागद्वेष से रहित होकर मुख में जैसे स्पर्श ही नहीं हुआ हो, इस प्रकार से केवल क्षुधा की निवृत्ति के उद्देश्य से अर्जुन मुनि आहार सेवन करते हैं। इस कथन से इनकी रसविषयक मूर्च्छा के आत्यन्तिक अभाव का संसूचन किया गया है। संयमी व्यक्ति की उत्कृष्ट साधना रसनेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना है। अर्जुन मुनि ने इस साधना के रहस्य को भलीभांति समझ लिया था और उसे जीवन में उतार भी लिया था।

'तेण ओरालेण विउलेण पयत्तेण पग्गहिएण महाणुभागेण तवोकम्मेण'—तेन पूर्वभणितेन उदारेण—प्रधानेन, विपुलेन—विशालेन भगवता दत्तेन, प्रगृहीतेन उत्कृष्टभावनः स्वीकृतेन, महानुभागेन-महान् अनुभागः प्रभावो यस्य, तेन तपःकर्मणा।' यहाँ पर अर्जुनमुनि ने जो तप आराधन किया है उस तप की महत्ता को अभिव्यक्त किया गया है। प्रस्तुत पाठ में तपःकर्म विशेष्य है और उदार आदि उसके विशेषण हैं। इनकी अर्थविचारणा इस प्रकार है—

तेन — यह शब्द पूर्व प्रतिपादित तप की ओर संकेत करता है। अर्जुन मुनि के साधना-प्रकरण में बताया गया था कि अर्जुनमुनि जब नगर में भिक्षार्थ जाते थे तब उनको लोगों की ओर से बहुत बुरा-भला कहा जाता था, उनका अपमान किया जाता था, ... तथापि

होती है। तप रूप अग्नि के द्वारा कर्म-मल के भस्मसात् होने पर आत्मा शुद्ध स्फटिक की भांति नि हो जाती है। इसलिए अर्जुनमुनि ने संयम ग्रहण करने के अनन्तर अपने कर्ममल युक्त आत्मा निर्मल बनाने के लिये तपरूप अग्नि को प्रज्वलित किया। परिणाम-स्वरूप वे कैवल्य-प्राप्ति अनन्तर निर्वाण-पद को प्राप्त हुए।

श्रेणिकचरित्र में लिखा है कि अर्जुनमाली के शरीर में मुद्गरपाणि यक्ष का पांच मास दिनों तक प्रवेश रहा। उसमें उसने ११४१ व्यक्तियों का प्राणान्त किया। इसमें ९७८ पुरुष १६३ स्त्रियां थीं। इससे स्पष्ट प्रमाणित है कि वह प्रतिदिन सात व्यक्तियों की हत्या करता रह यहां एक आशंका होती है कि जिस व्यक्ति ने इतना बड़ा प्राणि-वध किया और पाप कर्म से आत का महान् पतन किया, उस व्यक्ति को केवल छह मास की साधना से कैसे मुक्ति प्राप्त हो गई?

उत्तर यह है कि तप में अचिन्त्य, अतर्क्य एवं अद्भुत शक्ति है। आगम कहता है—भवकोडि सचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जइ।' अर्थात् करोड़ों भवों में संचित किए-बांधे कर्म भी तपश्चर्या द्वा नष्ट किए जा सकते हैं। यह भी कहा गया है—

अण्णाणी जं कम्मं खवेइ भवसयसहस्सकोडीहिं।

तं नाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ ऊसासमेत्तेण—प्रवचनसार।

अर्थात् अज्ञानी जीव जिन कर्मों को लाखों-करोड़ों भवों में खपा पाता है, उन्हें त्रिगुप्त—मन वचन, काय का गोपन करने वाला ज्ञानी आत्मा एक श्वास जितने स्वल्प काल में क्षय कर डालता है।

जब तीव्रतर तप की अग्नि प्रज्वलित होती है तो कर्मों के दल के दल सूखे घास-फूस की तरह भस्मसात् हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत प्रसंग में यह भी कहा जा सकता है कि अर्जुन मालाकार द्वारा जो वध किया गया, वह प्रस्तुतः यक्ष द्वारा किया गया वध था। अर्जुन उस समय यक्षाविष्ट होने से पराधीन था। वह तो यन्त्र की भांति प्रवृत्ति कर रहा था। अतएव मनुष्यवध योग्य कषाय की तीव्रता उसमें संभव नहीं।

४–१४ अध्ययन

काश्यप आदि गाथापति

१५—तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए। सेणिए राया, कासवे नामं गाहावई परिवसइ। जहा मकाई। सोलस वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

एवं—खेमए वि गाहावई, नवरं-कायंदी नयरी। सोलस वासा परियाओ विपुले पव्वए सिद्धे।

एवं—धिइहरे वि गाहावई कायंदीए नयरीए। सोलस वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

एवं—केलासे वि गाहावई, नवरं-साएए नगरे। बारस वासाइं परियाओ विपुले सिद्धे।

एवं—हरिचंदणे वि गाहावई साएए नयरे। बारस वासा परियाओ विपुले सिद्धे।

एवं—वारत्तए वि गाहावई, नवरं-रायगिहे नयरे। बारस वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

एवं—सुदंसणे वि गाहावई, नवरं-वाणियग्गामे नयरे। दूइपलासए चेइए। पंच वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे ग्यारह श्रावकों का उल्लेख किया गया है। ये सब मोह-ममत्व के बन्धन तोडकर तथा वैराग्य से नाता जोडकर मगलमय करुणासागर भगवान् महावीर के चरणों में पहुचकर दीक्षित हो गये। इनके जीवन मे जो-जो अन्तर है वह निम्नोक्त तालिका मे दिया जा रहा है—

नाम	नगर	उद्यान	दीक्षा-पर्याय	निर्वाण-स्थान
१. श्री काश्यपजी	राजगृह नगर	गुणशीलक	१६ वर्ष	विपुल पर्वत
१. श्री क्षेमकजी	काकदी नगरी		१६ वर्ष	विपुल पर्वत
३. श्री धृतिधरजी	काकदी नगरी		१६ वर्ष	विपुल पर्वत
४. श्री कैलाशजी	साकेत नगर		१२ वर्ष	विपुल पर्वत
५. श्री हरिचन्दनजी	साकेत नगर		१२ वर्ष	विपुल पर्वत
६. श्री वारत्तकजी	राजगृह नगर		१२ वर्ष	विपुल पर्वत
७. श्री सुदर्शनजी	वाणिज्यग्राम नगर	द्युतिपलाश	५ वर्ष	विपुल पर्वत
८. श्री पूर्णभद्रजी	वाणिज्यग्राम नगर		५ वर्ष	विपुल पर्वत
९. श्री सुमनभद्रजी	श्रावस्ती नगरी		अनेक वर्ष	विपुल पर्वत
१०. श्री सुप्रतिष्ठितजी	श्रावस्ती नगरी		२७ वर्ष	विपुल पर्वत
११. श्री मेघकुमारजी	राजगृह नगर		अनेक वर्ष	विपुल पर्वत

—

का वर्णन औपपातिकसूत्र से समझ लेना चाहिए। विजय राजा का पुत्र और श्रीदेवी का आत्मज अतिमुक्त नाम का कुमार था जो अतीव सुकुमार था।

उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विचरते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम को पावन करते हुए और शारीरिक खेद से रहित—श्रम व थकान या पीड़ा से रहित विहार करते हुए पोलासपुर नगर के श्रीवन उद्यान में पधारे।

उस काल, उस समय श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति, भगवतीप्रज्ञप्ति में कहे अनुसार निरन्तर बेले-बेले का तप करते हुए संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे। पारणे के दिन पहली पोरिसी में स्वाध्याय, दूसरी पोरिसी में ध्यान और तीसरी पोरिसी में शारीरिक शीघ्रता से रहित, मानसिक चपलता रहित, आकुलता और उत्सुकता रहित, होकर मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना करते हैं और फिर पात्रों और वस्त्रों की प्रतिलेखना करते हैं। फिर पात्रों की प्रमार्जना करके और पात्रों को लेकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे वहाँ आए, आकर भगवान् को वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार निवेदन किया—

"हे भगवन् ! आज षष्ठभक्त के पारणे के दिन आपकी आज्ञा होने पर पोलासपुर नगर में ऊंच, [नीच, और मध्यम कुलों में भिक्षा की विधि के अनुसार भिक्षा लेने के लिये जाना चाहता हूँ।]

श्रमण भगवान् महावीर ने कहा—देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो, करो, उसमें विलम्ब न करो।

भगवान् की आज्ञा होने पर गौतमस्वामी भगवान् के पास से, गुणशीलक चैत्य से निकले। निकल कर शारीरिक त्वरा और मानसिक चपलता से रहित एवं आकुलता व उत्सुकता से रहित युग (धूसरा) प्रमाण भूमि को देखते हुए ईर्यासमितिपूर्वक पोलासपुर नगर में आये। वहाँ ऊंच, नीच, और मध्यम कुलों में भिक्षा की विधि अनुसार भिक्षा हेतु] भ्रमण करने लगे।

इधर अतिमुक्त कुमार स्नान करके यावत् शरीर की विभूषा करके बहुत से लड़के-लड़कियों, बालक-बालिकाओं और कुमार-कुमारियों के साथ अपने घर से निकले और निकल कर जहाँ इन्द्र-स्थान अर्थात् क्रीडास्थल था वहाँ आये। वहाँ आकर उन बालक-बालिकाओं के साथ खेलने लगे।

उस समय भगवान् गौतम पोलासपुर नगर में सम्पन्न-असम्पन्न तथा मध्य कुलों में यावत् भ्रमण करते हुए उस क्रीडास्थल के पास से जा रहे थे।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र पोलासपुर के राजकुमार अतिमुक्त कुमार तथा श्रमण भगवान् महावीर के प्रथम गणधर गौतम के मधुर-मिलन या प्रथम मुलाकात का वर्णन प्रस्तुत करता है।

इसमें अतिमुक्त जिनके साथ खेलते है, उनके लिये "दारएहि य, डिभएहि य, कुमारएहि य" शब्द का प्रयोग हुआ है। दारक, डिभक तथा कुमार ये तीनों शब्द समानार्थी प्रतीत होते है परन्तु वृत्तिकार ने इनके विभिन्न अर्थ इस प्रकार बताये है—दारक—सामान्य बालक, अच्छी आयु वाला, डिभक—छोटी आयुवाला, कुमार—अविवाहित।

खेलने वाले स्थान को "इदट्ठाणे" कहा है जिसका अर्थ होता है क्रीडास्थान, जहाँ पर इन्द्रस्तम्भनामक एक मोटा खभा गाड़कर बालक और बालिकाएं खेलते है।

इसके बाद भगवान् गौतम ने अतिमुक्त कुमार इस प्रकार बोले—

'हे देवानुप्रिय ! आप कहाँ रहते है ?'

भगवान् गौतम ने अतिमुक्त कुमार को उत्तर दिया—

देवानुप्रिय ! मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक भगवान् महावीर धर्म की आदि करने वाले, यावत् शाश्वत स्थान—मोक्ष के अभिलाषी इसी पोलासपुर नगर के बाहर श्रीवन उद्यान मे मर्यादानुसार स्थान ग्रहण करके सयम एव तप से आत्मा को भावित कर विचरते है । हम वही रहते हैं ।'

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि बालक अतिमुक्त कुमार ने भगवान् गौतम से तीन प्रश्न किये थे । वे प्रश्न है—आप कौन है ? आप किस उद्देश्य से भ्रमण कर रहे हैं ? आप कहाँ पर रहते है ? प्रस्तुत सूत्र मे इन तीनों के उत्तर भी दिये गये है । प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् गौतम ने अपना परिचय देने के साथ-साथ साधु-जीवन की मर्यादा का वर्णन भी कर दिया है ।

प्रथम प्रश्न के उत्तर मे गौतम स्वामी ने कहा—'हम श्रमण है, निर्ग्रन्थ, ईर्यासमित एव ब्रह्मचारी है ।' वस्तुत ये चारो शब्द साधु-मर्यादा के परिचायक है । उनकी व्याख्या इस प्रकार है—तपस्वी अथवा प्राणिमात्र के साथ समतामय समान व्यवहार करने वाले महापुरुष श्रमण कहलाते है । जो परिग्रह से रहित है अथवा जिनमे राग-द्वेष की ग्रन्थि न हो वे निर्ग्रन्थ है ईर्या-गमन सबधी समिति-विवेक अर्थात् आगे देखकर तथा सावधानी से चलना ईरियासमिति है । चतुर्थ महाव्रत ब्रह्मचर्य के परिपालक साधक को ब्रह्मचारी कहते है ।

दूसरे प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान् गौतम ने अतिमुक्त कुमार से कहा—"वत्स ! मै भिक्षार्थ भ्रमण कर रहा हू ।'

तीसरे प्रश्न के उत्तर मे गौतम स्वामी ने श्रीवन उद्यान मे मेरा निवास है, ऐसा न कहकर श्रीवन उद्यान मे परमात्मा महावीर के पास हमारा निवास है, ऐसा बताया । इसमे उनकी अपूर्व गुरुभक्ति झलकती है ।

विउलेण...... ......गाहेमाण—इस पद मे विपुल शब्द के कई अर्थ पाए जाते हैं—प्रभूत, प्रचुर, विस्तीर्ण, विशाल, उत्तम, श्रेष्ठ आदि । प्रस्तुत मे 'उत्तम' अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

अतिमुक्त का गौतम के साथ वन्दनार्थ गमन

१७—तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एव वयासी—

"गच्छामि णं भंते ! अहं तुब्भेहिं सद्धिं समणं भगवं महावीरं पायवंदए ।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।"

तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवया गोयमेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वदइ जाव[1] पज्जुवासइ ।

---

१. वर्ग ६, सूत्र १३.

अतिमुक्त कुमार ने अपनी बात स्पष्ट करते हुआ कहा कि धर्म के संबंध में मैं सर्वथा अनभिज्ञ हूँ ऐसी बात नहीं है। धर्म को पूर्ण परिभाषा मैं नहीं जानता तथापि कुछ न कुछ जानता अवश्य हूँ। मुझे नन्हा बालक समझकर ऐसा न मान ले कि धर्म-तत्त्व से मैं सर्वथा अपरिचित हूँ। मुझे इस बात का बोध है कि जो पैदा हुआ है, उसे एक दिन मरना है, जन्म के साथ मृत्यु का अनादि कालीन संबंध है। जन्म लेने वाले को एक दिन मृत्यु का ग्रास बनना ही पड़ता है। यह मैं जानता हूँ, पर मुझे यह नहीं पता कि कब? कहाँ और कैसे? कितने समय के अनन्तर मृत्यु का प्रहार सहन करना पड़ेगा? मैं यह नहीं समझता कि जीव किन कर्मबन्ध के कारणों से चारों गतियों में जन्म लेते हैं परन्तु मैं यह अवश्य जानता हूँ कि अपने किए हुए कर्मों के कारण ही जीव नरकादि गतियों में उत्पन्न होते हैं।

अतिमुक्त कुमार के प्रस्तुत कथानक में अल्पज्ञ और सर्वज्ञ का स्पष्ट अन्तर परिलक्षित होता है।

प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त "कम्मायवणेहिं" शब्द का अर्थ वृत्तिकार ने इस प्रकार किया है—"कम्मायवणेहिं त्ति, कर्मणा ज्ञानावरणीयादीनामायतनानि आदानानि बंधहेतव इत्यर्थः। पाठान्तरेण "कम्मावयणेहिं त्ति' तत्र कर्मापतनानि यैः कर्मापतति-मात्मनि संभवति, तानि तथा"—अर्थात् "कर्म" शब्द ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि कर्मों का समूचक है और "आयतन" शब्द बंध के कारणों का परिचायक है। कहीं-कहीं "कम्मायवणेहिं" के स्थान पर "कम्मावयणेहिं" ऐसा पाठान्तर भी उपलब्ध होता है। जिन कारणों से कर्म आत्म-सरोवर में गिरते हैं, आत्म-प्रदेशों से संबंधित होते हैं, उन्हें कर्मापतन कहते हैं। दोनों का आशय एक ही है।

अतिमुक्त कुमार के जीवन संबंधी अंतगडसूत्र के इस वर्णन के अतिरिक्त भगवतीसूत्र के चतुर्थ उद्देशक में मुनि अतिमुक्त के जीवन की एक घटना का बड़ा सुन्दर विवेचन मिलता है। यहाँ आवश्यक होने से उसका उल्लेख किया जा रहा है—

'तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अइमुत्ते णाम कुमारसमणे पगइभद्दए, जाव-विणीए। तए णं से अइमुत्ते कुमारसमणे अण्णया कयाइं महावुट्ठिकायंसि णिवयमाणंसि कक्खपडिग्गह-रयहरणमायाए बहिया संपट्ठिए विहाराए। तए णं अइमुत्ते कुमारसमणे वाहयं वहमाणं पासइ, पासित्ता मट्टियाए पालिं बंधइ, बंधित्ता 'णाविया मे णाविया मे' णाविओ विव णावमयं पडिग्गहं उदगंसि कट्टु पव्वाहमाणे पव्वाहमाणे अभिरमई, तं च थेरा अदक्खु, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी अइमुत्ते णाम कुमारसमणे भगवं, से णं भंते! अइमुत्ते कुमारसमणे कइहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिहिइ, जाव अंतं करेहिइ?

अज्जो! त्ति समणे भगवं महावीरे ते थेरे एवं वयासी—एवं खलु अज्जो! ममं अंतेवासी अइमुत्ते णामं कुमारसमणे पगइभद्दए, जाव-विणीए, से णं अइमुत्ते कुमारसमणे इमेणं चेव भवग्गहणेणं सिज्झिहिइ जाव अंतं करिहिइ; तं मा णं अज्जो! तुब्भे अइमुत्तं कुमारसमणं हीलेह, निंदह, खिंसह, गरहह, अवमण्णह, तुब्भे णं देवाणुप्पिया! अइमुत्तं कुमारसमणं अगिलाए संगिण्हह, अगिलाए उवगिण्हह, अगिलाए भत्तेण पाणेण विणएण वेयावडियं करेह। अइमुत्ते णं कुमारसमणे अंतकरे चेव,

अतिमुक्त कुमार ने अपनी बात स्पष्ट करते हुआ कहा कि धर्म के सबंध में मैं सर्वथा अनभिज्ञ हूँ ऐसी बात नही है। धर्म की पूर्ण परिभाषा मैं नही जानता तथापि कुछ न कुछ जानता अवश्य हूँ। मुझे नन्हा बालक समझकर ऐसा न मान ले कि धर्म-तत्त्व से मैं सर्वथा अपरिचित हूँ। मुझे इस बात का बोध है कि जो पैदा हुआ है, उसे एक दिन मरना है, जन्म के साथ मृत्यु का अनादि कालीन सबंध है। जन्म लेने वाले को एक दिन मृत्यु का ग्रास बनना ही पड़ता है। यह मैं जानता हूँ, पर मुझे यह नही पता कि कब? कहाँ और कैसे? कितने समय के अनन्तर मृत्यु का प्रहार सहन करना पड़ेगा? मैं यह नही समझता कि जीव किन कर्मबन्ध के कारणो से चारो गतियों मे जन्म लेते हैं परन्तु मैं यह अवश्य जानता हूँ कि अपने किए हुए कर्मों के कारण ही जीव नरकादि गतियों में उत्पन्न होते हैं।

अतिमुक्त कुमार के प्रस्तुत कथानक में अल्पज्ञ और सर्वज्ञ का स्पष्ट अन्तर परिलक्षित होता है।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त "कम्मायणेहिं" शब्द का अर्थ वृत्तिकार ने इस प्रकार किया है—"कम्मायणेहिं त्ति, कर्मणा ज्ञानावरणीयादीनामायतनानि आदानानि बधहेतव इत्यर्थः। पाठान्तरेण "कम्मायणेहिं त्ति' तत्र कर्मापतनानि यै कर्मापतति-आत्मनि सभवति, तानि तथा"—अर्थात् "कर्म" शब्द ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि कर्मों का संसूचक है और "आयतन" शब्द बध के कारणो का परिचायक है। कही-कही "कम्मायणेहिं" के स्थान पर "कम्मावयणेहिं" ऐसा पाठान्तर भी उपलब्ध होता है। जिन कारणो से कर्म आत्म-सरोवर मे गिरते हैं, आत्म-प्रदेशों से सबधित होते है, उन्हे कर्मापतन कहते है। दोनो का आशय एक ही है।

अतिमुक्त कुमार के जीवन संबंधी अंतगडसूत्र के इस वर्णन के अतिरिक्त भगवतीसूत्र के चतुर्थ उद्देशक मे मुनि अतिमुक्त के जीवन की एक घटना का बड़ा सुन्दर विवेचन मिलता है। यहाँ आवश्यक होने से उसका उल्लेख किया जा रहा है—

'तेण कालेण तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अइमुत्ते णाम कुमारसमणे पगइभद्दए, जाव-विणीए। तए ण से अइमुत्ते कुमारसमणे अण्णया कयाइ महावुट्ठिकायंसि निवयमाणंसि कक्खपडिग्गह-रयहरणमायाए बहिया सपट्ठिए विहाराए। तए ण अइमुत्ते कुमारसमणे वाहय वहमाण पासइ, पासित्ता मट्टियाए पालि बधइ, बधित्ता 'णाविया मे णाविया मे' णाविओ विव णावमय पडिग्गह उदगसि कट्टु पव्वाहमाणे पव्वाहमाणे अभिरमइ, त च थेरा अद्दक्खु, जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एव वयासी—

एव खलु देवाणुप्पियाण अंतेवासी अइमुत्ते णाम कुमारसमणे भगव, से ण भते! अइमुत्ते कुमारसमणे कइहि भवग्गहणेहि सिज्झिहिइ, जाव अत करेहिइ?

अज्जो! त्ति समणे भगव महावीरे ते थेरे एव वयासी—एवं खलु अज्जो! मम अंतेवासी अइमुत्ते णाम कुमारसमणे पगइभद्दए, जाव-विणीए, से ण अइमुत्ते कुमारसमणे इमेण चेव भवग्गहणेण सिज्झिहिइ जाव अत करेहिइ, त मा ण अज्जो! तुब्भे अइमुत्त कुमारसमण हीलेह, निंदह, खिंसह, गरहह, अवमन्नह, तुब्भे ण देवाणुप्पिया! अइमुत्त कुमारसमण अगिलाए सगिण्हह, अगिलाए उवगिण्हह, अगिलाए भत्तेण पाणेण विणएण वेयावडिय करेह। अइमुत्ते ण कुमारसमणे अतकरे चेव,

उस काल और उस समय वाणारसी नगरी में काममहावन नामक उद्यान था। उस वाणारसी नगरी में अलक्ष नामक राजा था।

उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर यावत् महावन उद्यान में पधारे। जन-परिषद् प्रभु-वन्दन को निकली, राजा अलक्ष भी प्रभु महावीर के पधारने की बात सुनकर प्रसन्न हुआ और कोणिक राजा के समान वह भी यावत् प्रभु की सेवा में उपासना करने लगा। प्रभु ने धर्मकथा कही।

तब अलक्ष राजा ने श्रमण भगवान महावीर के पास 'उदायन' की तरह श्रमणदीक्षा ग्रहण की। विशेषता यह कि उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य सिंहासन पर बिठाया। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक श्रमणचारित्र का पालन किया यावत् विपुलगिरि पर्वत पर जाकर सिद्ध हुए।

इस प्रकार "हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अंतगड दशा के छट्ठे वर्ग का यह अर्थ कहा है।"

विवेचन—प्रस्तुत सोलहवे अध्ययन में वाराणसी नगरी के अलक्ष नरेश के जीवन का उल्लेख किया गया है। अलक्ष नरेश भगवान् महावीर के चरणों में परम श्रद्धालु भक्त थे। इनकी प्रभु चरणों में निष्ठा एवं आस्था का दिग्दर्शन कराने के लिये सूत्रकार ने चंपा-नरेश कूणिक की ओर संकेत किया है, जिसका वर्णन औपपातिक सूत्र में है।

"जहा उदायणे तहा निक्खते" का अर्थ है—जिस प्रकार महाराजा उदायन ने दीक्षा ग्रहण की थी, उसी प्रकार अलक्ष नरेश भी दीक्षित हुए।

उदायन राजा का वर्णन भगवतीसूत्र के शतक १३ उ. ६ में आया है। उसके अनुसार उदायन सिन्धु-सौवीर आदि सोलह देशों का स्वामी था।

एक दिन वह पौषधशाला में पौषध करके बैठा हुआ था। धर्म-जागरण करते हुए उसे भगवान् महावीर की स्मृति आ गई। वह सोचने लगा—वह नगर, कानन धन्य हैं जहां भगवान् विहार करते हैं। वे राजा, आदि धन्य है जो भगवान की वाणी सुनते है, उनकी उपासना करते हैं, अपने हाथ से उन्हें निर्दोष भोजन, वस्त्र, पात्र आदि देते है। मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ ? मुझे तो उन महाप्रभु के दर्शन करने का भी अवसर नहीं मिलता। चिन्तन की धारा ऊर्ध्वमुखी होने लगी। उसने सोचा—यदि भगवान् मेरी नगरी में पधार जाएँ तो मैं उनकी सेवा करूं, और साथ ही इस असार ससार को छोड़कर दीक्षित हो जाऊं।

उस समय भगवान् चम्पा के पूर्णभद्र उद्यान में विराजमान थे। वीतभयपुर और चम्पा में सात सौ कोस का अन्तर था, पर करुणासागर भक्तवत्सल भगवान् महावीर ने अपने भक्त की कामना पूर्ण करने के लिये चम्पा से प्रस्थान कर दिया और धीरे-धीरे यात्रा करते हुए वे उदायन की नगरी में पधार गये। भगवान् के पधारने के शुभ समाचार पाकर उदायन आनन्द-विभोर हो उठे। बड़े समारोह के साथ राजा, रानी और कुमार सब भगवान् के चरणों में उपस्थित हुए। धर्म-कथा सुनी, भगवान् की कल्याण-कारिणी वाणी सुनकर उदायन को वैराग्य हो गया। अपना उत्तराधिकारी निश्चित करने के लिये वह वापस महलों में आया। शासन का सारा दायित्व अभीच कुमार को

सत्तमो वग्गो

१-१३ अध्ययन

नंदा आदि

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं छट्ठस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तमस्स वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१. नंदा तह २. नंदवई, ३. नंदुत्तर ४. नंदिसेणिया चेव ।
५. मरुता ६. सुमरुता ७. महमरुता ८. मरुदेवा य अट्ठमा ॥ १ ॥
९. भद्दा य १०. सुभद्दा य, ११. सुजाया १२. सुमणाइया ।
१३. भूयदिण्णा य बोधव्वा, सेणिय भज्जाण नामाइं ॥ २ ॥

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसिलए चेइए । सेणिए राया, वण्णओ । तस्स णं सेणियस्स रण्णो नंदा नाम देवी होत्था-वण्णओ । सामी समोसढे, परिसा निग्गया । तए [redacted] सा नंदा देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा हट्ठतुट्ठा कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता जाणं दुरुहइ । जहा पउमावई जाव[1] एकारस अंगाइं अहिज्जित्ता वीस वासाइं परियाओ जाव[2] सिद्धा ।

एव तेरस वि देवीओ नंदा-गमेण नेयव्वाओ ।

छट्ठे वर्ग का अर्थ सुनने के अनन्तर आर्य जंबू स्वामी आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—भगवन् ! यावत् मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अंतगडदशा के छट्ठे वर्ग का जो अर्थ बताया है, उसका मैंने श्रवण कर लिया है, अब श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अंतगड दशा के सातवें वर्ग का जो अर्थ कहा है उसे सुनाने की कृपा करें ।

उसके उत्तर में सुधर्मा स्वामी ने कहा—सातवें वर्ग के तेरह अध्ययन कहे गये हैं, जो इस प्रकार हैं—

गाथार्थ—(१)नन्दा, (२) नन्दवती, (३) नन्दोत्तरा, (४) नन्दश्रेणिका, (५) मरुता, (६) सुमरुता, (७) महामरुता, (८) मरुद्देवा, (९) भद्रा, (१०) सुभद्रा, (११) सुजाता, (१२) सुमनायिका, (१३) भूतदत्ता । ये सब श्रेणिक राजा की रानियाँ थीं ।" ये सब श्रेणिक राजा की पत्नियों के नाम हैं ।

---

1. वर्ग—५, सूत्र ६-६   2. वर्ग—५, सूत्र ६

सत्तमो वग्गो

१-१३ अध्ययन

नंदा आदि

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं छट्ठस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तमस्स वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१ नंदा तह २. नंदवई, ३. नंदुत्तर ४. नंदिसेणिया चेव।
५. मरुता ६. सुमरुता ७. महमरुता ८. मरुदेवा य अट्ठमा ॥ १ ॥
९. भद्दा य १०. सुभद्दा य, ११. सुजाया १२. सुमणाइया।
१३. भूयदिण्णा य बोधव्वा, सेणिय भज्जाण नामाइं ॥ २ ॥

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया, वण्णओ। तस्स णं सेणियस्स रण्णो नंदा नाम देवी [illegible] णओ। सामी समोसढे, परिसा निग्गया। [illegible] पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता जाणं दुरुहइ। [illegible] इं परियाओ जाव[1] सिद्धा।

एव तरस वि देवीओ नंदा-गमेण नेयव्वाओ।

छट्ठे वर्ग का अर्थ सुनने के अनन्तर आर्य जम्बू स्वामी आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—भगवन् ! यावत् मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अंतगडदशा के छट्ठे वर्ग का जो अर्थ बताया है, उसका मैंने श्रवण कर लिया है, अब श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अंतगड दशा के सातवें वर्ग का जो अर्थ कहा है उसे सुनाने की कृपा करें।

उसके उत्तर में सुधर्मा स्वामी ने कहा—सातवें वर्ग के तेरह अध्ययन कहे गये हैं, जो इस प्रकार है—

गाथार्थ—(१)नन्दा, (२) नन्दवती, (३) नन्दोत्तरा, (४) नन्दश्रेणिका, (५) मरुता, (६) सुमरुता, (७) महामरुता, (८) मरुद्देवा, (९) भद्रा, (१०) सुभद्रा, (११) सुजाता, (१२) सुमनातिका, (१३) भूतदत्ता। ये सब श्रेणिक राजा की रानियाँ थीं।" [illegible] श्रेणिक राजा की रानियों के नाम हैं।

अट्ठमो वग्गो

प्रथम अध्ययन

काली

उत्क्षेप

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता तं जहा—

संगहणी गाहा

(१) काली (२) सुकाली (३) महाकाली, (४) कण्हा (५) सुकण्हा (६) महाकण्हा।
(७) वीरकण्हा य बोधव्वा, (८) रामकण्हा तहेव य।
(९) पिउसेणकण्हा नवमी, दसमी (१०) महासेणकण्हा य ॥१॥

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए। तत्थ णं चंपाए नयरीए कोणिए राया, वण्णओ। तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रण्णो भज्जा, कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया, काली नामं देवी होत्था, वण्णओ। जहा नंदा जाव[1] सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। बहूहिं चउत्थ जाव[2] अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

श्रीजंबू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—"भगवन् ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् महावीर ने आठवें अंग अंतगडदशा के आठवें वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?"

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा—"हे जंबू ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु महावीर ने आठवें अंग अंतगडदशा के आठवें वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं—

गाथार्थ—(१) काली, (२) सुकाली, (३) महाकाली, (४) कृष्णा, (५) सुकृष्णा, (६) महाकृष्णा, (७) वीरकृष्णा, (८) रामकृष्णा, (९) पितृसेनकृष्णा और (१०) महासेनकृष्णा।

श्री जंबूस्वामी ने पुनः प्रश्न किया—"भगवन् ! यदि आठवें वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं तो प्रथम अध्ययन का श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?"

आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा—"हे जंबू ! उस काल और उस समय चम्पा नाम की नगरी

---

१. वर्ग ५, सूत्र ४, ६   २. वर्ग १, सूत्र ९

करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठ छट्ठाइं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करे करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करे करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

एवं खलु एसा रयणावलीए तवोकम्मस्स पढमा परिवाडी एगेणं संवच्छरेणं तिहिं मासेहिं बावीसाए य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव [अहाअत्थं अहातच्चं अहामग्गं अहाकप्पं सम्मं काएण फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया] आराहिया भवइ।

एक दिन वह काली आर्या, आर्या चन्दना के समीप आयी और आकर हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक इस प्रकार बोली—"हे आर्ये! आपकी आज्ञा प्राप्त हो तो मैं रत्नावली तप का अंगीकार करके विचरना चाहती हूं।"

आर्या चन्दना ने कहा—"देवानुप्रिये! जैसे सुख हो वैसा करो, प्रमाद मत करो।"

तब काली आर्या, आर्या चन्दना की आज्ञा पाकर रत्नावली तप को अंगीकार करके विचरने लगी, जो इस प्रकार है—

उपवास किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, बेला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, तेला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, आठ बेले किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, उपवास किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, बेला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, तेला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, दशम- चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, द्वादशम-पचोला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, छह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, सात उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, आठ उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, नव उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, दस उपवास किये, करके, सर्वगुणकामयुक्त पारणा किया, पारणा करके, ग्यारह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, बारह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, तेरह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, चौदह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, पन्द्रह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, सोलह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, चौंतीस बेले किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, सोलह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, पन्द्रह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, चौदह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, तेरह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, बारह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, ग्यारह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, दस उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, नव उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त

द्वितीय अध्ययन

सुकाली

सुकाली का कनकावली तप

५—तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी। पुण्णभद्दे चेइए। कोणिए राया। तत्थ णं सेणियस्स रण्णो भज्जा, कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया सुकाली नामं देवी होत्था। जहा काली तहा सुकाली वि निक्खंता जाव[1] बहूहिं जाव[2] तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

तए णं सा सुकाली अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव अज्जचंदणा अज्जा जाव[3] इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी कणगावली-तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए। एवं जहा रयणावली तहा कणगावली वि, नवरं—तिसु ठाणेसु अट्ठमाइं करेइ, जहिं रयणावलीए छट्ठाइं। एक्काए परिवाडीए संवच्छरो, पंच मासा, बारस य अहोरत्ता। चउण्हं पंच वरिसा नव मासा अट्ठारस दिवसा। सेसं तहेव। नव वासा परियाओ जाव[4] सिद्धा।

उस काल और उस समय में चंपा नाम की नगरी थी। वहां पूर्णभद्र उद्यान था और कोणिक राजा वहां राज्य करता था। उस नगरी में श्रेणिक राजा की रानी और कोणिक राजा की छोटी माता सुकाली नाम की रानी थी। काली की तरह सुकाली भी प्रव्रजित हुई और बहुत से उपवास आदि तपों से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

फिर वह सुकाली आर्या अन्यदा किसी दिन आर्य-चन्दना आर्या के पास आकर इस प्रकार बोली—"हे आर्ये ! आपकी आज्ञा हो तो मैं कनकावली तप अंगीकार करके विचरना चाहती हूँ।" आर्या चन्दना की आज्ञा पाकर रत्नावली के समान सुकाली ने कनकावली तप का आराधन किया। विशेषता इसमें यह थी कि तीनों स्थानों पर अष्टम-तेले किये जब कि रत्नावली में षष्ठ-बेले किये जाते हैं। एक परिपाटी में एक वर्ष, पांच मास और बारह अहोरात्रियां लगती हैं। इस एक परिपाटी में ८८ दिन का पारणा और १ वर्ष, २ मास १४ दिन का तप होता है। चारों परिपाटी का काल पांच वर्ष, नव मास और अठारह दिन होते हैं। शेष वर्णन काली आर्या के समान है। नव वर्ष तक चारित्र का पालन कर यावत् सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गई।

विवेचन—कनकावली तप और रत्नावली तप में इतना ही भेद है कि रत्नावली में जहां आठ बेले तथा ३४ बेले किये जाते हैं, वहां कनकावली तप में आठ तेले और ३४ तेले किये जाते हैं। शेष तप के दिन बराबर हैं। पारणे में भी समानता है। कनकावली तप की एक परिपाटी में एक वर्ष पांच मास और १२ दिन लगते हैं। इस प्रकार चारों परिपाटियों के ५ वर्ष ९ मास और १८ दिन होते हैं। कनकावली की प्रथम परिपाटी की रूपरेखा अगले पृष्ठ पर प्रदर्शित यंत्र द्वारा स्पष्ट होती है।

---

१. वर्ग ५, सूत्र ५-६ २. वर्ग ५, सूत्र ६
३. वर्ग ८, सूत्र ४ ४. वर्ग ५, सूत्र ६

तृतीय अध्ययन

महाकाली

महाकाली का क्षुल्लकसिंहनिष्क्रीडित तप

६—एवं महाकाली वि। नवरं—खुड्डागसीहनिक्कीलियं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तं जहा—

चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

तहेव चत्तारि परिवाडीओ। एक्काए परिवाडीए छम्मासा सत्त य दिवसा। चउण्हं दो वरिसा अट्ठावीसा य दिवसा जाव[1] सिद्धा।

काली की तरह महाकाली ने भी दीक्षा अंगीकार की। विशेष यह कि उसने लघुसिंहनिष्क्रीडित तप किया जो इस प्रकार है—

उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुण-युक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा

१. वर्ग ८, सूत्र २.

त्याग किया, तीसरी में लेपमात्र का भी त्याग किया, चौथी में उपवासों का पारणा आयंबिल तप से किया।

खुड्डाग-सिंह निकीलियं

१		१
२		२
१		१
३		३
२		२
४		४
३		३
५		५
४		४
६		६
५		५
७		७
६		६
८		८
७		७
९	८	९

तपस्या काल { एक परिपाटी का काल ६ मास, ७ दिन / चार परिपाटी का काल २ वर्ष, २८ दिन

कुल दिन { एक परिपाटी के उपवास ५ मास, ४ दिन / चार परिपाटी के उपवास १ वर्ष, ८ मास, १६ दिन

पारणे { एक परिपाटी के पारणे ३३ / चार परिपाटी के पारणे १३२

पञ्चम अध्ययन

सुकृष्णा

सुकृष्णा का भिक्षुप्रतिमा आराधन

८—एवं सुकण्हा वि, नवरं—सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

पढमे सत्तए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणयस्स।

दोच्चे सत्तए दो-दो भोयणस्स दो-दो पाणयस्स पडिगाहेइ।

तच्चे सत्तए तिण्णि-तिण्णि दत्तीओ भोयणस्स, तिण्णि-तिण्णि दत्तीओ पाणयस्स।

चउत्थे सत्तए चत्तारि-चत्तारि दत्तीओ भोयणस्स, चत्तारि-चत्तारि दत्तीओ पाणयस्स।

पंचमे सत्तए पंच-पंच दत्तीओ भोयणस्स, पंच-पंच दत्तीओ पाणयस्स।

छट्ठे सत्तए छ-छ दत्तीओ भोयणस्स, छ-छ दत्तीओ पाणयस्स।

सत्तमे सत्तए सत्त-सत्त दत्तीओ भोयणस्स, सत्त-सत्त दत्तीओ पाणयस्स पडिगाहेइ।

एवं खलु एयं सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं एगूणपण्णाए राइंदिएहिं एगेण य छण्णउएण भिक्खासएण अहासुत्तं जाव[1] आराहेत्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं अज्जं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेत्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिए! मा पडिबंधं करेहि।

काली आर्या की तरह आर्या सुकृष्णा ने भी दीक्षा ग्रहण की। विशेष यह कि वह सप्त-सप्तमिका भिक्षुप्रतिमा ग्रहण करके विचरने लगी, जो इस प्रकार है—

प्रथम सप्ताह में एक दत्ति भोजन की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की। द्वितीय सप्ताह में दो दत्ति भोजन की और दो दत्ति पानी की ग्रहण की। तृतीय सप्ताह में तीन दत्ति भोजन की और तीन दत्ति पानी की ग्रहण की। चतुर्थ सप्ताह में चार दत्ति भोजन की और चार दत्ति पानी की ग्रहण की। पांचवें सप्ताह में पांच दत्ति भोजन की और पांच दत्ति पानी की ग्रहण की। छठे सप्ताह में छह दत्ति भोजन की और छह दत्ति पानी की ग्रहण की। सातवें सप्ताह में सात दत्ति भोजन की और सात दत्ति पानी की ग्रहण की।

इस प्रकार उनचास (४९) रात-दिन में एक सौ छियानवे (१९६) भिक्षा की दत्तियां होती हैं। सुकृष्णा आर्या ने सूत्रोक्त विधि के अनुसार इसी 'सप्तसप्तमिका' भिक्षुप्रतिमा तप की सम्यक्

१ वर्ग ५, सूत्र [illegible]

पढमे अट्ठए एक्केक्कं भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणयस्स जाव [दत्ति पडिगाहेइ], अट्ठमे अट्ठए अट्ठट्ठ भोयणस्स पडिगाहेइ, अट्ठट्ठ पाणयस्स।

एवं खलु एयं अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं चउसट्ठीए राइंदिएहिं दोहि य अट्ठासीएहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव[1] आराहित्ता नवनवमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ—

पढमे नवए एक्केक्कं भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणयस्स जाव [दत्ति पडिगाहेइ] नवमे नवए नव-नव दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेइ, नव-नव पाणयस्स।

एवं खलु एयं नवनवमियं भिक्खुपडिमं एक्कासीतिए राइंदिएहिं चउहि य पंचुत्तरेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्त जाव[2] आराहेत्ता दसदसमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ—

पढमे दसए एक्केक्कं भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणयस्स जाव [दत्ति पडिगाहेइ]।

दसमे दसए दस-दस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेइ, दस-दस पाणयस्स।

एवं खलु एयं दसदसमियं भिक्खुपडिमं एक्केणं राइंदियसएणं अद्धछट्ठेहि य भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव[3] आराहेइ, आराहेत्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

तए णं सा सुकण्हा अज्जा तेणं ओरालेणं तवोकम्मेणं जाव[4] सिद्धा। निक्खेवओ।

आर्यचन्दना आर्या से आज्ञा प्राप्त होने पर आर्या सुकृष्णा देवी अष्ट-अष्टमिका नामक भिक्षुप्रतिमा को धारण कर के विचरने लगी। अष्ट-अष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा का स्वरूप इस प्रकार है—

पहले आठ दिनों में आर्या सुकृष्णा ने एक दत्ति भोजन की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की। दूसरे अष्टक में अन्न-पानी की दो-दो दत्तियां ली। इसी प्रकार क्रम से तीसरे में तीन-तीन, चौथे में चार-चार, पांचवें में पांच-पांच, छट्ठे में छह-छह, सातवें में सात-सात और आठवें में आठ-आठ अन्न-जल की दत्तियां ग्रहण की।

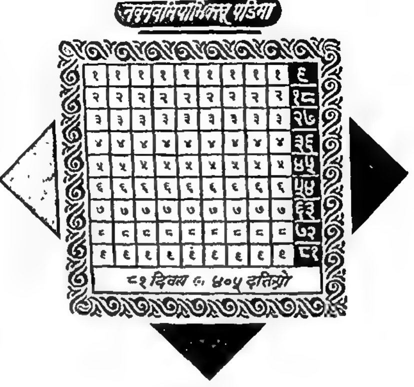
इस अष्ट-अष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा की आराधना में ६४ दिन लगे और २८८ भिक्षाएं ग्रहण की गईं। इस भिक्षु-प्रतिमा की सूत्रोक्त पद्धति से आराधना करने के अनन्तर आर्या सुकृष्णा ने नव-नवमिकानामक भिक्षु-प्रतिमा की आराधना प्रारम्भ कर दी।

नव-नवमिका भिक्षु-प्रतिमा की आराधना करते समय आर्या सुकृष्णा ने प्रथम नवक में प्रतिदिन एक-एक दत्ति भोजन की और एक-एक दत्ति पानी की ग्रहण की। इसी प्रकार आगे क्रमशः एक-एक दत्ति बढ़ाते हुए नौवें नवक में अन्न जल की नौ-नौ दत्तियां ग्रहण की।

[illegible]

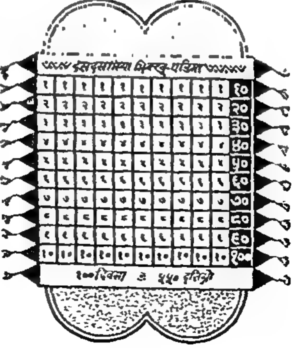
की अ[illegible]
प्रतिम
प्रारंभ की।

१-२-३ वर्ग ८, सूत्र २
४. वर्ग ८, सूत्र ४



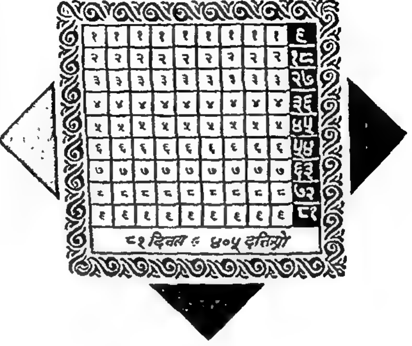
१	१	१	१	१	१	१	१	१	९
२	२	२	२	२	२	२	२	२	१८
३	३	३	३	३	३	३	३	३	२७
४	४	४	४	४	४	४	४	४	३६
५	५	५	५	५	५	५	५	५	४५
६	६	६	६	६	६	६	६	६	५४
७	७	७	७	७	७	७	७	७	६३
८	८	८	८	८	८	८	८	८	७२
९	९	९	९	९	९	९	९	९	८१

८१ दिवस ४०५ दत्तिओ



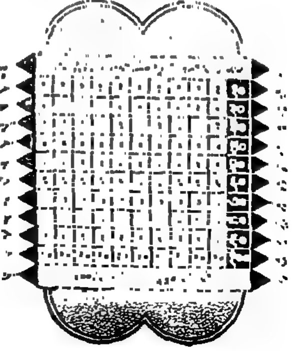
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१०
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२०
३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३०
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४०
५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६०
७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७०
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८०
९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९०
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१००

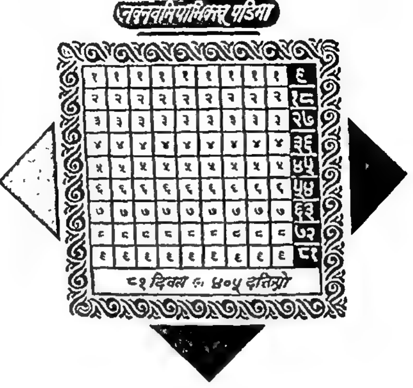
१०० दिवस ५५० दत्तिओ



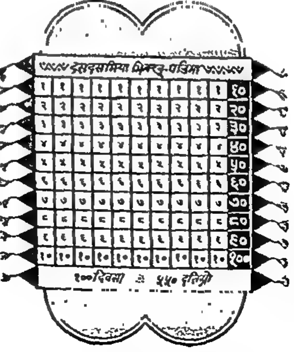
१	१	१	१	१	१	१	१	१	९
२	२	२	२	२	२	२	२	२	१८
३	३	३	३	३	३	३	३	३	२७
४	४	४	४	४	४	४	४	४	३६
५	५	५	५	५	५	५	५	५	४५
६	६	६	६	६	६	६	६	६	५४
७	७	७	७	७	७	७	७	७	६३
८	८	८	८	८	८	८	८	८	७२
९	९	९	९	९	९	९	९	९	८१

८१ दिवस ८ ४०५ दत्तिओ





१	१	१	१	१	१	१	१	१	९
२	२	२	२	२	२	२	२	२	१८
३	३	३	३	३	३	३	३	३	२७
४	४	४	४	४	४	४	४	४	३६
५	५	५	५	५	५	५	५	५	४५
६	६	६	६	६	६	६	६	६	५४
७	७	७	७	७	७	७	७	७	६३
८	८	८	८	८	८	८	८	८	७२
९	९	९	९	९	९	९	९	९	८१



१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१०
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२०
३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३०
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४०
५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६०
७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७०
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८०
९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९०
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१००

पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचौला किया करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

इस प्रकार यह लघु (क्षुद्र-क्षुल्लक) सर्वतोभद्र तप-कर्म को प्रथम परिपाटी तीन माह और दस दिनों में पूर्ण होती है। इसकी सूत्रानुसार सम्यग् रीति (विधि) से आराधना करके आर्या महाकृष्णा ने इसकी दूसरी परिपाटी में उपवास किया और विगय रहित पारणा किया। जैसे रत्नावली तप में चार परिपाटियां बताई गई वैसे ही इस में भी होती हैं। पारणा भी उसी प्रकार समझना चाहिये। इस की प्रथम परिपाटी में पूरे सौ दिन लगे, जिसमें पच्चीस दिन पारणा के और ७५ दिन उपवास के होते हैं। चारों परिपाटियों का सम्मिलित काल एक वर्ष, एक मास और दस दिन हुआ।

विवेचन—"खुड्डियं सव्वओभद्दं पडिमं" में क्षुल्लक शब्द महद् की अपेक्षा से है। सर्वतोभद्र तप दो प्रकार का है, एक महद् एक लघु। यह लघु है इस बात को प्रकट करने के लिये क्षुल्लक शब्द का प्रयोग किया गया है। गणना करने पर जिसके अंक सम अर्थात् बराबर हों, विषम न हों, जिधर से गणना की जाए उधर से ही समान हो, उसे सर्वतोभद्र कहते हैं। इसमें एक से लेकर पांच अंक दिये जाते हैं, चारों ओर जिधर से चाहे गिन लें, सभी ओर १५ ही संख्या होती है। एक से पांच तक सभी ओर से गिनने पर एक जैसी संख्या होने से इसे सर्वतोभद्र कहा जाता है। यह प्रस्तुत यन्त्र से स्पष्ट होती है—



आर्या काली की तरह आर्या वीरकृष्णा ने भी दीक्षा अंगीकार की। विशेष यह कि उसने महासर्वतोभद्र तप कर्म अंगीकार किया, जो इस प्रकार है—

उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह प्रथम लता हुई।

चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह दूसरी लता हुई।

सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह तीसरी लता हुई।

तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया। बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह चौथी लता हुई।

छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया करके चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह पांचवीं लता हुई।

बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया करके चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचोला किया, करके

अष्टम अध्ययन

रामकृष्णा

रामकृष्णा का भद्रोत्तरप्रतिमा तप

१२—एवं रामकण्हा वि. नवरं—भद्दोत्तरपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तं जहा—

दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

एक्काए कालो छम्मासा वीस य दिवसा। चउण्हं कालो दो वरिसा दो मासा वीस य दिवसा। सेसं तहेव जहा काली जाव[1] सिद्धा।

आर्या काली की तरह आर्या रामकृष्णा का भी वृत्तान्त समझना चाहिए। विशेष यह कि रामकृष्णा आर्या भद्रोत्तर प्रतिमा अंगीकार करके विचरण करने लगी, जो इस प्रकार है—

पाँच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह प्रथम लता हुई।

सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पाँच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह दूसरी लता हुई।

नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पाच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह तीसरी लता पूर्ण हुई।

---

१. वर्ग ८, सूत्र ३, ४.

नवम अध्ययन

पितृसेनकृष्णा

पितृसेनकृष्णा का मुक्तावली तप

१३—एवं-पिउसेणकण्हा वि, नवरं—मुत्तावलिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तं जहा—

चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बावीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउवीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छव्वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठावीसइमं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

एवं तहेव ओसारेइ जाव चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

एक्काए कालो एक्कारस मासा पन्नरस य दिवसा। चउण्हं तिण्णि वरिसा दस य मासा। सेसं जाव सिद्धा।[1]

पितृसेनकृष्णा का चरित्र भी आर्या काली की तरह समझना। विशेष यह कि पितृसेनकृष्णा ने मुक्तावली तप अंगीकार किया, जो इस प्रकार है—

उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकाम-गुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया,

१. वर्ग ८, सूत्र १-८



मुक्तावली तप
का
स्थापना-यन्त्र

एक आयंबिल किया, करके उपवास किया, करके दो आयंबिल किये, करके उपवास किया, करके तीन आयंबिल किये, करके उपवास किया, करके चार आयंबिल किये, करके उपवास किया, करके पांच आयंबिल किये, करके उपवास किया, करके छह आयंबिल किये, करके उपवास किया।

ऐसे एक एक की वृद्धि से आयंबिल बढ़ाए। बीच-बीच में उपवास किया, इस प्रकार सौ आयंबिल तक करके उपवास किया।

इस प्रकार महासेनकृष्णा आर्या ने इस 'वर्द्धमान-आयंबिल' तप की आराधना चौदह वर्ष, तीन माह और बीस अहोरात्र की अवधि में सूत्रानुसार विधिपूर्वक पूर्ण की। आराधना पूर्ण करके आर्या महासेनकृष्णा जहाँ अपनी गुरुणी आर्या चन्दनबाला थी, वहाँ आई और चंदनबाला को वंदना-नमस्कार करके, उनकी आज्ञा प्राप्त करके, बहुत से उपवास आदि से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

इस महान् तपतेज से महासेनकृष्णा आर्या शरीर से दुर्बल हो जाने पर भी अत्यन्त देदीप्यमान लगने लगी। एकदा महासेनकृष्णा आर्या को स्कंदक के समान धर्म-चिन्तन उत्पन्न हुआ। आर्यचन्दना आर्या से पूछकर यावत् संलेखना की और जीवन-मरण की आकांक्षा से रहित होकर विचरने लगी।

महासेनकृष्णा आर्या ने आर्यचन्दना आर्या के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, पूरे सत्रह वर्ष तक संयमधर्म का पालन करके, एक मास की संलेखना से आत्मा को भावित करके साठ भक्त अनशन को पूर्णकर यावत् जिस कार्य के लिये संयम लिया था उसकी पूर्ण आराधना करके अन्तिम श्वास-उच्छ्वास से सिद्ध बुद्ध हुई।

गाथार्थ—एवं श्रेणिक राजा की भार्याओं में से पहली काली देवी का दीक्षाकाल आठ वर्ष का, तत्पश्चात् क्रमशः एक-एक वर्ष की वृद्धि करते-करते दसवीं महासेनकृष्णा का दीक्षाकाल सत्तरह वर्ष का जानना चाहिए।

विवेचन—"आयंबिलवड्ढमाण"—आयंबिल-वर्धमान—वह तप है जिसमें आयंबिल क्रमशः बढ़ाया जाता है। इस तप की आराधना में १४ वर्ष ३ मास और २० दिन लगते हैं।

पिछले तपों का परिशीलन करने से पता चलता है कि सूत्रकार ने तपों की जो दिन-संख्या लिखी है, उसमें तपस्या के दिन और पारणे के दिन, इस प्रकार सभी दिन संकलित किए जाते हैं। यदि उसी पद्धति का अनुसरण किया जाए तो इसका काल-मान १४ वर्ष ३ माह और २० दिन कैसे हो सकता है? समाधान यही है कि इसमें पारणे का कोई दिन नहीं आता। इसके दो कारण हैं—प्रथम तो सूत्रकार जैसे पीछे पारणे का निर्देश करते चले आ रहे हैं, वैसे यहां पर सूत्रकार ने निर्देश नहीं किया, दूसरा यदि पारणे के सब दिन भी साथ में सम्मिलित कर दिए जाएं तो इस तप की दिनसंख्या १४ वर्ष ३ मास २० दिन न रहकर १४ वर्ष १० दिन हो जाती है। अतः यही समझना ठीक है कि आर्या महासेनकृष्णा ने १४ वर्ष ३ मास और २० दिन तक तप किया, बीच में कोई पारणा नहीं किया। आयंबिल-वर्धमान-तप का स्थापनायंत्र इस प्रकार है—

आगम में वर्णित विशेषनाम

संकेत— वर्ग / सूत्र

१. तीर्थंकरविशेष—
- १. प्रथम तीर्थंकर ५/३
- २. अरिष्टनेमि भगवान्—वर्ग ३ से वर्ग ५ तक
- ३. महावीर स्वामी—वर्ग ६ से वर्ग ८ तक

२. आगम में वर्णित (जहा) शब्द से गृहीत व्यक्तिविशेष—
- १. अभयकुमार ३/१३
- २. उदायन ६/१६
- ३. गगदत्त ६/१
- ४. गौतमस्वामी ३/६, ६/१२
- ५. देवानन्दा ब्राह्मणी ३/६
- ६. महाबल कुमार १/७, ३/१८
- ७. मेघकुमार १/८, ३/१८
- ८. स्कन्दकमुनि १/६, ६/१, ८/१४

३. आगम विशेष—
- १. उवासगदसा (उपासकदशाग) १/२
- २. पण्णत्ति (प्रज्ञप्ति-भगवतीसूत्र) ६/१, ६/१५

४. प्रयुक्त व्यक्तिविशेष—मुनि आदि
- १. अतिमुक्तकुमार श्रमण ३/६ (जिसने देवकी को भविष्य कहा था)
- २. गौतम स्वामी ६/१५
- ३. चन्दना साध्वी ८/१
- ४. यक्षिणी साध्वी ५/६

५. देव—विशेष
- १. मुद्गरपाणि यक्ष ६/२
- २. वैश्रमण कुबेर १/५
- ३. हरिणेगमेषी ३/१०

६. क्षत्रियवर्ण के व्यक्तिविशेष—

राजा
- १ अन्धकवृष्णि १/७
- २ अलक्षराजा ६/१६
- ३ श्रीकृष्ण वासुदेव १/६
- ४. कोणिकराजा ८/१
- ५. जितशत्रु ३/१
- ६. प्रद्युम्न ४/१
- ७. विजयराजा ६/१५
- ८. वसुदेवराजा ३/४
- ९. बलदेव ३/२८
- १० समुद्रविजय ४/१
- ११. श्रेणिकराजा ६/१

रानियाँ—
- १ अन्धकवृष्णि-पत्नी १/७
- २. काली ८/१-४
- ३. कृष्णा ८/७
- ४. गाधारी ५/१
- ५. गौरीदेवी ५/१
- ६. चेल्लणा ६/२
- ७. जाम्बवती ४/१
- ८. देवकी ३/७
- ९. धारिणी १/७
- १०. नन्दश्रेणिका ७/१
- ११. नन्दा ७/१
- १२. नन्दावती ७/१
- १३. नन्दोत्तरा ७/१
- १४. पद्मावती ५/१
- १५. पितृसेनकृष्णा ८/१३
- १६. बलदेवपत्नी ३/२८

स्पष्ट है कि गौतम गोत्र के महान गौरव के अनुरूप ही उनका व्यक्तित्व विराट् व प्रभावशाली था।

एक बार इन्द्रभूति सोमिल आर्य के निमन्त्रण पर पावापुरी मे होने वाले यज्ञोत्सव मे गए थे। उसी अवसर पर भगवान् महावीर भी पावापुरी के बाहर महासेन उद्यान मे पधारे हुए थे। भगवान् की महिमा को देखकर इन्द्रभूति उन्हें पराजित करने की भावना से भगवान् के समवसरण मे आये, किन्तु वह स्वय ही पराजित हो गये। अपने मन का सशय दूर हो जाने पर वह अपने पाँच-सौ शिष्यों सहित भगवान् के शिष्य हो गये। गौतम प्रथम गणधर हुए।

आगमो मे व आगमेत्तर साहित्य मे गौतम के जीवन के सम्बन्ध मे बहुत कुछ लिखा मिलता है।

इन्द्रभूति गौतम दीक्षा के समय ५० वर्ष के थे। ३० वर्ष साधु-पर्याय मे और १२ वर्ष केवली-पर्याय मे रहे। अपने निर्वाण के समय अपना गण सुधर्मा को सौंपकर गुण-शिलक चैत्य मे मासिक अनशन करके भगवान् के निर्वाण से १२ वर्ष बाद ६२ वर्ष की अवस्था मे निर्वाण को प्राप्त हुए।

शास्त्रों मे गणधर गौतम का परिचय इस प्रकार का दिया गया है—वे भगवान् के ज्येष्ठ शिष्य थे। सात हाथ ऊँचे थे। उनके शरीर का सस्थान और सहनन उत्कृष्ट प्रकार का था। सुवर्ण रेखा के समान गौर थे। उग्र तपस्वी, महा तपस्वी, घोर तपस्वी, घोर ब्रह्मचारी और सक्षिप्त विपुल-तेजोलेश्या सम्पन्न थे। शरीर मे अनासक्त थे। चौदह पूर्वधर थे। मति, श्रुत, अवधि और मन.पर्याय—चार ज्ञान के धारक थे। सर्वाक्षरसन्निपाती थे, वे भगवान् महावीर के समीप मे उत्कुटुक आसन से नीचा सिर कर के बैठते थे। ध्यान-मुद्रा मे स्थिर रहते हुए सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

(२) कृष्ण

कृष्ण वासुदेव। माता का नाम देवकी, पिता का नाम वासुदेव था। कृष्ण का जन्म अपने मामा कस की कारा मे मथुरा मे हुआ था।

जरासन्ध के उपद्रवों के कारण श्रीकृष्ण ने व्रज-भूमि को छोड कर सुदूर सौराष्ट्र मे जाकर द्वारका की रचना की।

श्रीकृष्ण भगवान् नेमिनाथ के परम भक्त थे। भविष्य मे वह अमम नाम के तीर्थंकर होंगे। जैन साहित्य मे, सस्कृत और प्राकृत उभय भाषाओं मे श्रीकृष्ण का जीवन विस्तृत रूप मे मिलता है।

द्वारका का विनाश हो जाने पर श्रीकृष्ण की मृत्यु जराकुमार के हाथों से हुई। श्रीकृष्ण का जीवन महान् था।

(३) कोणिक

राजा श्रेणिक की रानी चेलना का पुत्र, अगदेश की राजधानी चम्पा नगरी का अधिपति। भगवान् महावीर का परम भक्त।

कोणिक राजा एक प्रसिद्ध राजा है। जैनागमों मे अनेक स्थानों पर उसका अनेक प्रकार से वर्णन आता है।

जमालि के माता-पिता उसको उसके संकल्प से हटा नहीं सके। अपनी आठ पत्नियों का त्याग करके उसने पाँच-सौ क्षत्रिय कुमारों के साथ भगवान् के पास दीक्षा ली।

जमालि ने भगवान् के सिद्धान्त-विरुद्ध प्ररूपणा की थी।

(७) जितशत्रुराजा

शत्रु को जीतने वाला। जिस प्रकार बौद्ध जातकों में प्राय. ब्रह्मदत्त राजा का नाम आता है, उसी प्रकार जैन-ग्रन्थों में प्राय जितशत्रु राजा का नाम आता है। जितशत्रु के साथ प्रायः धारिणी का भी नाम आता है। किसी भी कथा के प्रारम्भ में किसी न किसी राजा का नाम बतलाना, कथाकारों की पुरातन पद्धति रही है।

इस नाम का भले ही कोई राजा न भी हो, तथापि कथाकार अपनी कथा के प्रारम्भ में इस नाम का उपयोग करता है। वैसे जैन-साहित्य के कथा-ग्रन्थों में जितशत्रु राजा का उल्लेख बहुत आता है। निम्नलिखित नगरों के राजा का नाम जितशत्रु बताया गया है—

नगर	राजा
१. वाणिज्य ग्राम	जितशत्रु
२. चम्पा नगरी	"
३. उज्जयनी	"
४. सर्वतोभद्र नगर	"
५ मिथिला नगरी	"
६. पांचाल देश	"
७. आमलकल्पा नगरी	"
८ श्रावस्ती नगरी	"
९. वाणारसी नगरी	"
१०. आलभिया नगरी	"
११. पोलासपुर	"

(८) धारिणी देवी

श्रेणिक राजा की पटरानी थी। धारिणी का उल्लेख आगमों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

संस्कृत साहित्य के नाटकों में प्राय. राजा की सबसे बड़ी रानी के नाम के आगे 'देवी' विशेषण लगाया जाता है, जिसका अर्थ होता है रानियों में सबसे बड़ी अभिषिक्त रानी, अर्थात्—पटरानी।

राजा श्रेणिक के अनेक रानियां थीं, उनमें धारिणी मुख्य थी। इसीलिए धारिणी के आगे 'देवी' विशेषण लगाया गया है। देवी का अर्थ है—पूज्या।

मेघकुमार इसी धारिणी देवी का पुत्र था, जिसने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

भगवान् ने पूर्वभवों का स्मरण कराते हुए संयम में धृति रखने का उपदेश दिया, जिससे
घ मुनि संयम में स्थिर हो गया।

एक मास की संलेखना की। सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ। महाविदेहवास
से सिद्ध होगा।

(११) स्कन्दक मुनि

स्कन्दक संन्यासी श्रावस्ती नगरी के रहने वाले गर्दभालि परिव्राजक का शिष्य था और गौतम स्वामी का पूर्व मित्र था। भगवान् महावीर के शिष्य पिंगलक निर्ग्रन्थ के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सका, फलतः श्रावस्ती के लोगों से जब सुना कि भगवान् महावीर कृतंगला नगर के बाहर छत्र-पलाश उद्यान में पधारे हैं, तो स्कन्दक भी भगवान् के पास जा पहुंचा। अपना समाधान मिलने पर वह वहीं पर भगवान् का शिष्य हो गया।

स्कन्दक मुनि ने स्थविरों के पास रहकर ११ अंगों का अध्ययन किया।

भिक्षु की १२ प्रतिमाओं की क्रम से साधना की, आराधना की।

गुणरत्नसंवत्सर तप किया। शरीर दुर्बल, क्षीण और अशक्त हो गया। अन्त में राजगृह के समीप विपुल-गिरि पर जाकर एक मास की संलेखना की। काल करके १२ वें देवलोक में गया। वहाँ से महाविदेहवास से सिद्ध होगा।

स्कन्दक मुनि की दीक्षा-पर्याय १२ वर्ष की थी।

(१२) सुधर्मा स्वामी

ये कोल्लाग सन्निवेश के निवासी अग्निवेश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता धम्मिल थे और माता भद्दिला थी। पांच सौ छात्र इनके पास अध्ययन करते थे। पचास वर्ष की अवस्था में शिष्यों के साथ प्रव्रज्या ली। बयालीस वर्ष पर्यन्त छद्मावस्था में रहे। महावीर के निर्वाण के बाद बारह वर्ष व्यतीत होने पर केवली हुए और आठ वर्ष तक केवली अवस्था में रहे।

श्रमण भगवान के सर्व गणधरों में सुधर्मा दीर्घजीवी थे, अतः अन्यान्य गणधरों ने अपने-अपने निर्वाण के समय अपने-अपने गण सुधर्मा को समर्पित कर दिये थे।[1]

महावीर-निर्वाण के १२ वर्ष बाद सुधर्मा को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और बीस वर्ष के पश्चात् सौ वर्ष की अवस्था में मासिक अनशन-पूर्वक राजगृह के गुणशीलचैत्य में निर्वाण प्राप्त किया।[2]

(१३) श्रेणिक राजा

मगध देश का सम्राट् था। अनाथी मुनि से प्रतिबोधित होकर भगवान् महावीर का परम भक्त हो गया था। ऐसी एक जन-श्रुति है।

---

१. (क) जीवंते चेव भट्टारए णवहिं जणेहिं अज्ज सुधम्मस्स गणो णिक्खित्तो दीहाउगोत्ति कातुं।

—कल्पसूत्र चूर्णि २०१.

(ख) परिनिव्वुया गणहरा जीवंते नायए नव जणा उ, इदभूई सुहम्मो अ, रायगिहे निव्वुए वीरे।

—आवश्यक निर्युक्ति गा. ६५८.

२. आवश्यक निर्युक्ति, ६५९.

(२) गुणशील

राजगृह के बाहर गुणशील नामक एक प्रसिद्ध बगीचा था। भगवान महावीर के शताधिक बार यहाँ समवसरण लगे थे। शताधिक व्यक्तियों ने यहाँ पर श्रमणधर्म व चारित्रधर्म ग्रहण किया था। भगवान् महावीर के प्रमुख शिष्य गणधरों ने यहीं पर अनशन कर निर्वाण प्राप्त किया था। वर्तमान का गुणावा, जो नवादा स्टेशन से लगभग तीन मील पर है, वही महावीर के समय का गुणशील है।

(३) चम्पा

चम्पा अग देश की राजधानी थी। कनिंघम ने लिखा है—भागलपुर से ठीक २४ मील पर पत्थरघाट है। यही इसके आस-पास चम्पा की उपस्थिति होनी चाहिए। इसके पास ही पश्चिम की ओर एक बडा गाव है, जिसे चम्पानगर कहते है और एक छोटा-सा गाव है, जिसे चम्पापुर कहते है। सभव है, ये दोनो प्राचीन राजधानी चम्पा की सही स्थिति के द्योतक हो।[1]

फाहियान ने चम्पा को पाटलिपुत्र से १८ योजन पूर्व दिशा मे गगा के दक्षिण तट पर स्थित माना है।[2]

महाभारत की दृष्टि से चम्पा का प्राचीन नाम 'मालिनी' था। महाराजा चम्प ने उसका नाम चम्पा रखा।[3]

स्थानाग[4] मे जिन दस राजधानियों का उल्लेख हुआ है और दीघनिकाय मे जिन छह महानगरियों का वर्णन किया गया है, उनमे एक चम्पा भी है। औपपातिक सूत्र मे इसका विस्तार से निरूपण है।[5] दशवैकालिक सूत्र की रचना आचार्य शय्यभव ने यही पर की थी।[6]

सम्राट् श्रेणिक के निधन के पश्चात् कूणिक (अजातशत्रु) को राजगृह मे रहना अच्छा न लगा और एक स्थान पर चम्पा के सुन्दर उद्यान को देखकर चम्पानगर बसाया।[7] गणि कल्याणविजयजी के अभिमतानुसार चम्पा पटना से पूर्व (कुछ दक्षिण मे) लगभग सौ कोस पर थी। आजकल इसे चम्पानाला कहते हैं। यह स्थान भागलपुर से तीन मील दूर पश्चिम मे है।[8]

चम्पा के उत्तर-पूर्व मे पूर्णभद्र नाम का रमणीय चैत्य था, जहाँ पर भगवान महावीर ठहरते थे।

---

१. दी एन्शियण्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, पृ. ५४६-५४७
२. ट्रैवेल्स ऑफ फाहियान, पृ. ६५.
३. महाभारत १२/५/१३४
४. स्थानाग १०/७१७
५. औपपातिक, चम्पा वर्णन
६ जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज, पृ. ४६४
७. त्रिषष्ठि तीर्थंकर, पृ ६५
८. श्रमण भगवान महावीर, पृ. ३६९

बौद्ध दृष्टि से चार महाद्वीप हैं उन चारों के केन्द्र में सुमेरु है। सुमेरु के पूर्व में पुब्ब विदेह[1] पश्चिम में अपरगोयान अथवा अपर गोदान[2] उत्तर में उत्तर कुरु[3] और दक्षिण में जम्बुद्वीप है।[4]

बौद्ध परम्परा के अनुसार यह जम्बुद्वीप दस हजार योजन बड़ा है।[5] इसमें चार हजार योजन जल में मग्न होने के कारण समुद्र कहा जाता है और तीन हजार योजन में मानव रहते हैं। शेष तीन हजार योजन में चौरासी हजार कूटों (चोटियों) से सुशोभित चारों ओर बहती ५०० नदियों से ऊँचा हिमवान पर्वत है।[6]

उल्लिखित वर्णन से स्पष्ट है कि जिसे हम भारत के नाम से जानते हैं वही बौद्धों में जम्बुद्वीप के नाम से विख्यात है।[7]

(५) द्वारका (द्वारवती) :—

भारत की प्राचीन प्रसिद्ध नगरियों में द्वारका का अपना विशिष्ट स्थान रहा है। श्रमण और वैदिक दोनों ही संस्कृतियों के वाङ्मय में द्वारका को विस्तार से चर्चा है।

(१) ज्ञाताधर्मकथा व अन्तगडदशाओ के अनुसार द्वारका सौराष्ट्र में थी।[8] वह पूर्व-पश्चिम में बारह योजन लम्बी, और उत्तर-दक्षिण में नव योजन विस्तीर्ण थी। वह स्वयं कुबेर द्वारा निर्मित सोने के प्राकार वाली थी, जिस पर पांच वर्णों के नाना मणियों से सुसज्जित कपिशीर्षक-कंगूरे थे। वह बड़ी सुरम्य, अलकापुरी-तुल्य और प्रत्यक्ष देवलोक-सदृश थी। वह प्रासादिक, दर्शनीय अभिरूप तथा प्रतिरूप थी। उसके उत्तर-पूर्व में रैवतक नामक पर्वत था। उसके पास समस्त ऋतुओं में फल-फूलों से लदा रहनेवाला नन्दनवन नामक सुरम्य उद्यान था। उस उद्यान में सुरप्रिय यक्षायतन था। उस द्वारका में श्रीकृष्ण वासुदेव अपने सम्पूर्ण राजपरिवार के साथ रहते थे।[9]

---

१. डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, खण्ड २, पृ. २३६
२. वही, खण्ड १, पृ. ११७
३. वही, खण्ड १, पृ. ३५५
४. वही, खण्ड १ पृ. ९४१
५. वही, खण्ड १, पृ. ९४१
६. वही, खण्ड २, पृ. १३२५-१३२६
७. (क) इण्डिया ऐज डेसक्राइब्ड इन अर्ली टेक्सट्स आव बुद्धिज्म ऐंड जैनिज्म पृ. १, विमलचरण लॉ लिखित.
   (ख) जातक प्रथम खण्ड, पृ. २८२, ईशानचन्द्र घोष
   (ग) भारतीय इतिहास की रूपरेखा भा. १, पृ. ४, लेखक-जयचन्द्र विद्यालंकार
   (घ) पाली इंगलिश डिक्शनरी पृ. ११२, टी. डब्ल्यू रीस डेविस तथा विलियम स्टेड
   (ङ) सुत्तनिपात की भूमिका-धर्मरक्षित पृ. १
   (च) जातक-मानचित्र—भदन्त आनन्द कौशल्यायन
८. (क) ज्ञाताधर्म कथा १।१६, सूत्र ११३
   (ख) अन्तगडदशाओ
९. ज्ञाताधर्म कथा १।५, सूत्र ५८

योजन धरती लेकर द्वारका का निर्माण किया बताया है।

महाभारत में श्रीकृष्ण ने द्वारकागमन के बारे में युधिष्ठिर से कहा—मथुरा को छोड़कर ह कुशस्थली नामक नगरी में आये जो रैवतक पर्वत से उपशोभित थी। वहां दुर्गम दुर्ग का निर्मा किया, अधिक द्वारों वाली होने के कारण द्वारवती अथवा द्वारका कहलाई।[1]

महाभारत जन-पर्व में नीलकंठ ने कुशावर्त का अर्थ द्वारका किया है।[2]

'ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास' में प्रभुदयाल मित्तल ने लिखा है[3] शूरसेन जनपद में यादवों के आ जाने के कारण द्वारका के उस छोटे में राज्य की बड़ी उन्नति हुई थी। वहां पर दुर्भेद्य दुर्ग और विशाल नगर का निर्माण कराया गया और उसे अंधक-वृष्णि संघ के एक शक्तिशाली यादव राज्य के रूप में संगठित किया गया। भारत के समुद्र-तट का वह सुदृढ़ राज्य विदेशी अनार्यों के आक्रमण के लिए देश का एक सजग प्रहरी भी बन गया था। गुजराती भाषा में 'द्वार' का अर्थ बंदरगाह है। इस प्रकार द्वारका या द्वारवती का अर्थ हुआ 'बंदरगाहों की नगरी।' उन बंदरगाहों से यादवों ने सुदूर-समुद्र की यात्रा कर विपुल सम्पत्ति अर्जित की थी। द्वारका में निर्धन, भाग्यहीन, निर्बल तन और मलिन मन का कोई भी व्यक्ति नहीं था।[4]

(१) रायस डेविड्स ने कम्बोज को द्वारका की राजधानी लिखा है।[5]

(२) पेतवत्थु में द्वारका को कम्बोज का एक नगर माना है।[6] डाक्टर मलशेखर ने प्रस्तुत कथन का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है संभव है—यह कम्बोज ही 'कंसभोज' हो, जो कि अंधकवृष्णि के दस पुत्रों का देश था।[7]

(३) डा मोतीचन्द्र कम्बोज को पामीर प्रदेश मानते है और द्वारका को बदरवशा से उत्तर में अवस्थित 'दरवाज' नामक नगर कहते है।[8]

---

१. कुशस्थली पुरी रम्या रैवतेनोपशोभिताम्।
ततो निवेश तस्यां च कृतवन्तो वयं नृप। ॥५०॥
तथैव दुर्ग-संस्कार देवैरपि दुरासदम्।
स्त्रियोऽपि यस्यां युध्येयु किमु वृष्णि महारथा ॥५१॥
....मथुरां सम्परित्यज्य गता द्वारवतीपुरीम् ॥६७।
—महाभारतसभापर्व, अ १४

२. (क) महाभारत जन पर्व, अ १६० श्लोक ५०
(ख) प्रतीक का प्रकाशन, पृ १६३

३ द्वितीय खण्ड ब्रज का इतिहास, पृ ८३

४. हरिवंशपुराण २।५८।६५.

५. Buddhist India, P. 28
Kamboja was the adjoining country in the extreme North-West, with Dvaraka as its Capital.

६. पेतवत्थु भाग २, पृ ९

७. दि डिक्शनरी आफ पाली प्रोपर नेम्स, भाग १, पृ ११२६

८. ज्योग्राफिकल एण्ड इकोनामिक स्टडीज इन दी महाभारत, पृष्ठ ३२-४०

(६) भरतक्षेत्र —

जम्बूद्वीप का दक्षिणी छोर का भूखण्ड भरतक्षेत्र के नाम से विश्रुत है। यह अर्धचन्द्राकार है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार इसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में लवण समुद्र है।[१] उत्तर दिशा में चूलहिमवंत पर्वत है।[२] उत्तर से दक्षिण तक भरतक्षेत्र की लम्बाई ५२६ योजन ६ कला है और पूर्व से पश्चिम की लम्बाई १४४७१ योजन और कुछ कम ६ कला है।[३] इसका क्षेत्रफल ५३,८०,६८१ योजन, १७ कला और १७ विकला है।[४]

भरतक्षेत्र की सीमा में उत्तर में चूलहिमवन नामक पर्वतसे पूर्व में गगा और पश्चिम में सिन्धु नामक नदियां बहती है। भरतक्षेत्र के मध्य भाग में ५० योजन विस्तारवाला वैताढ्य पर्वत है।[५] जिसके पूर्व और पश्चिम में लवणसमुद्र है। इस वैताढ्य से भरत-क्षेत्र दो भागों में विभक्त हो गया है[६] जिन्हें उत्तर भरत और दक्षिण भरत कहते है। जो गगा और सिन्धु नदियाँ चूलहिमवंत पर्वत से निकलती है वे वैताढ्य पर्वत में से होकर लवणसमुद्र में गिरती है। इस प्रकार इन नदियों के कारण, उत्तर भरत खण्ड तीन भागो में और दक्षिण भरत खण्ड भी तीन भागों में विभक्त होता है।[७]

इन छह खण्डो में उत्तरार्द्ध के तीन खण्ड अनार्य कहे जाते हैं। दक्षिण के अगल-बगल के खण्डो में भी अनार्य रहते है। जो मध्यखण्ड है उसमें २५॥ देश आर्य माने गये है।[९] उत्तरार्द्ध भरत उत्तर से दक्षिण तक २३८ योजन ३ कला है और दक्षिणार्द्ध भरत भी २३८ योजन ३ कला है।

जिनसेन के अनुसार भरत क्षेत्र मे सुकोशल, अवन्ती, पुण्ड्र, अश्मक, कुरु, काशी, कलिग, अग, बंग, सुह्म, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजागल करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोकण, बनवास, आन्ध्र, कर्णाटक, कोशल, चोल, केरल दास, अभिसार, सौवीर, शूरसेन, अपरान्तक, विदेह सिन्धु, गान्धार, यवन, चेदि, पल्लव, काम्बोज, आरट्ट, वाल्हीक, तुरुष्क, शक और केकय आदि देशों की रचना मानी गई है।[८]

बौद्ध साहित्य में अग, मगध, काशी, कोशल, वज्ज, मल्ल, चेति, वत्स, कुरु, पचाल मत्स्य, शूरसेन, अश्मक, अवन्ती, गधार और कम्बोज इन सोलह जनपदो के नाम मिलते है।[१०]

---

१. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सटीक, वक्षस्कार १, सूत्र १०, पृ ६५।२
२. वही. १।१०।६५-२
३. लोकप्रकाश, सर्ग १६, श्लोक ३०-३१
४. लोकप्रकाश, सर्ग १६, श्लोक ३३-३४
५. वही. १६।४८
६. वही. १६।३५
७. वही. १६।३६
९. (क) वही. १६, श्लोक ४४
   (ख) बृहत्कल्पभाष्य १, ३२६३ वृत्ति, तथा १, ३२७५-३२८९.
८. आदिपुराण १६।१५२-१५६
१०. अगुत्तरनिकाय; पालिटेक्सट सोसायटी सस्करण : जिल्द १, पृ. २१३, जिल्द ४, पृ २५२

रैवतक पर्वत पर जा रही थी। बीच में वह वर्षा से भीग गई और कपड़े सुखाने के लिए वहीं एक गुफा में ठहरी,[1] जिसकी पहचान आज भी राजीमती गुफा से की जाती है।[2] रैवतक पर्वत सौराष्ट्र में आज भी विद्यमान है। सभव है प्राचीन द्वारका इसी की तलहटी में बसी हो।

रैवतक पर्वत का नाम ऊर्जयन्त भी है।[3] रुद्रदाम और स्कधगुप्त के गिरनार शिला-लेखों में इसका उल्लेख है। यहा पर एक नन्दनवन था, जिसमें सुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन था। यह पर्वत अनेक पक्षियों एवं लताओं से सुशोभित था। यहा पर पानी के झरने भी बहा करते थे[4] और प्रतिवर्ष हजारों लोग संखडि (भोज, जीमनवार) करने के लिए एकत्रित होते थे। यहां भगवान् अरिष्टनेमि ने निर्वाण प्राप्त किया था।[5]

दिगम्बर परम्परा के अनुसार रैवतक पर्वत की चन्द्रगुफा में आचार्य धरसेन ने तप किया था, और यही पर भूतबलि और पुष्पदन्त आचार्यों ने अवशिष्ट श्रुतज्ञान को लिपिबद्ध करने का आदेश दिया था।[6]

महाभारत में पाण्डवों और यादवों का रैवतक पर युद्ध होने का वर्णन आया है।[7]

जैन ग्रन्थों मे रैवतक, उज्जयत, उज्ज्वल, गिरिणाल और गिरनार आदि नाम इस पर्वत के आये हैं। महाभारत में भी इस पर्वत का दूसरा नाम उज्जयत आया है।[8]

(१२) विपुल-गिरि पर्वत :—

राजगृह नगर के समीप का एक पर्वत। आगमों में अनेक स्थलों पर इसका उल्लेख मिलता है। स्थविरों की देख-रेख में घोर तपस्वी यहा आकर सलेखना करते थे।

जैन ग्रन्थों मे इन पाच पर्वतों का उल्लेख मिलता है—

१. वैभारगिरि
२. विपुल गिरि

---

१. गिरि रेवयय जन्ती, वासेणुल्ला उ अन्तरा।
   वासन्ते अन्धयारम्मि अन्तो लयणस्स सा ठिया॥
२ विविध तीर्थकल्प, ३।१६
३. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ ४७२
४. बृहत्कल्पभाष्यवृत्ति, १।२९२२
५. (क) आवश्यकनिर्युक्ति, ३०७
   (ख) कल्पसूत्र, ६।१७८, पृ. १८२
   (ग) ज्ञातृधर्म कथा, ५, पृ ६८
   (घ) अन्तकृद्दशा, ५, पृ. २८
   (ङ) उत्तराध्ययन टीका, २२, पृ २८०
६. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ ४७२.
७. आदिपुराण में भारत, पृ. १०९.
८. भ. महावीर नी धर्मकथाओ, पृ. २१९, प. बेचरदासजी

मे ।[1] यह स्थान उत्तर-पूर्वीय रेलवे के बलरामपुर स्टेशन से जो सड़क जाती है, उससे दस मील दूर है। बहराईच से वह २९ मील पर अवस्थित है।

विद्वान वी० स्मिथ के अभिमतानुसार श्रावस्ती नेपाल देश के खजुरा प्रान्त में है और वह बालपुर की उत्तर दिशा में तथा नेपालगंज के सन्निकट उत्तर पूर्वीय दिशा में है।[2] युआन चुआङ्ग ने श्रावस्ती को जनपद माना है और उसका विस्तार छह हजार ली, उसकी राजधानी को 'प्रासाद-नगर' कहा है, जिसका विस्तार बीस ली माना है।[3]

जैन दृष्टि से यह नगरी अचिरावती (राप्ती) नदी के किनारे बसी थी। जिसमें बहुत कम पानी रहता था, जिसे पार कर जैन श्रमण भिक्षा के लिए जाते थे।[4] कभी-कभी उसमें बहुत तेज बाढ़ भी आ जाती थी।[5] श्रावस्ती बौद्ध और जैन संस्कृति का केन्द्रस्थान रहा है। केशी और गौतम का ऐतिहासिक संवाद यहीं हुआ।[6] अनेक ऐतिहासिक प्रसंग उस भूमि से जुड़े हुए हैं।[7] भगवान् महावीर ने छद्मस्थावस्था में दसवां चातुर्मास वहां पर किया था। केवलज्ञान होने पर भी वे अनेक बार वहाँ पर पधारे थे और सैंकड़ों व्यक्तियों को प्रव्रज्या प्रदान की थी और हजारों को उपासक बनाया था। श्रावस्ती के कोष्ठकोद्यान में गोशालक ने तेजोलेश्या से सुनक्षत्र और सर्वानुभूति मुनियों को मारा था और भगवान् महावीर पर भी तेजोलेश्या प्रक्षिप्त की थी। गोशालक का परम उपासक अयंपुल व हालाहला कुंभारिन यहीं के रहने वाले थे।

---

१. दी एन्शियण्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, पृ. ४६९-४७४
२. जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी, भाग १, जन. १९००
३. युआन चुआङ्ग्स् ट्रेवेल्स इन इण्डिया, भाग १ पृ. ३७७
४. (क) कल्पसूत्र
   (ख) बृहत्कल्प सूत्र, ४।३३.
   (ग) बृहत्कल्प भाष्य, ४।५६३९, ५६५३.
५. (क) आवश्यक चूर्णि, पृ ६०१
   (ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ४६५.
   (ग) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृ. ५६७
   (घ) दोनों ना कथाकोश, पृ. ६.
६. उत्तराध्ययन
७. देखिए-प्रस्तुत ग्रन्थ.

२२. श्री मोहनराजजी वालिया, अहमदाबाद
२३. श्री चेतनमलजी सुराणा, मद्रास
२४. श्री गणेशमलजी धर्मीचंदजी काकरिया, नागौर
२५. श्री बादलचंदजी मेहता, इन्दौर
२६ श्री हुकमचंदजी सागरचंदजी बेताला, इन्दौर
२७. श्री सुगनचन्दजी बोकड़िया, इन्दौर
२८ श्री इन्दरचंदजी बैद, राजनादगाव
२९ श्री मागीलालजी धर्मीचंदजी चोरडिया, चांगाटोला
३० श्री रघुनाथमलजी लिखमीचंदजी लोढ़ा, चांगाटोला
३१ श्री भवरलालजी मूलचंदजी सुराणा मद्रास
३२ श्री सिद्धकरणजी बैद, चांगाटोला
३३. श्री जालमचंदजी रिखबचंदजी बाफना, आगरा
३४. श्री भवरीमलजी चोरड़िया, मद्रास
३५. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपड़ा, अजमेर
३६. श्री घेवरचंदजी पुखराज जी, गोहाटी
३७. श्री मागीलालजी चोरड़िया, आगरा
३८ श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
३९. श्री गुणचंदजी दल्लीचंदजी कटारिया, बेल्लारी
४०. श्री अमरचंदजी बोथरा, मद्रास
४१. श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढ़ा, डोंडीलोहारा
४२. श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बैंगलोर
४३. श्री जड़ावमलजी सुगनचंदजी, मद्रास
४४. श्री पुखराजजी विजयराज जी, मद्रास
४५. श्री जयरचंदजी गेलड़ा, मद्रास
४६. श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कुप्पल

सहयोगी सदस्य

१. श्री पूनमचंदजी नाहटा, जोधपुर
२. श्री अमरचंदजी बालचंदजी मोदी, ब्यावर
३. श्री चम्पालालजी मीठालालजी सकलेचा, जालना
४. श्री छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
५. श्री भवरलालजी चोपड़ा, ब्यावर
६. श्री रतनलालजी चतर, ब्यावर
७. श्री जवरीलालजी अमरचंदजी कोठारी, ब्यावर
८. श्री मोहनलालजी गुलाबचंदजी चतर, ब्यावर
९. श्री बादरमलजी पुखराजजी बंट, कानपुर
१०. श्री के. पुखराजजी बाफना, मद्रास
११. श्री पुखराजजी बुधराजजी बोहरा, पीपलिया
१२. श्री चम्पालालजी बुधराजजी बाफणा, ब्यावर
१३. श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१४. श्री मागीलालजी प्रकाशचंदजी रुणवाल, वर
१५. श्री मोहनलालजी मंगलचंदजी पगारिया, रायपुर
१६. श्री भवरलालजी गौतमचंदजी पगारिया, कुशालपुरा
१७. श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१८. श्री फूलचंदजी गौतमचंदजी काठेड, पाली
१९. श्री रूपचंदजी जोधराजजी मूथा, पाली
२०. श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
२१. श्री देवकरणजी श्रीचंदजी डोसी, मेडतासिटी
२२, श्री माणकराजजी किशनराजजी, मेड़तासिटी
२३. श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेड़ता सिटी
२४. श्री बी गजराजजी बोकड़िया, सलेम
२५. श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, विल्लीपुरम्
२६. श्री कनकराज जी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
२७. श्री हरकराजजी मेहता, जोधपुर
२८. श्री सुमेरमलजी मेड़तिया, जोधपुर
२९, श्री घेवरचंदजी पारसमलजी टाटिया, जोधपुर
३०. श्री गणेशमलजी नेमीचंदजी टाटिया, जोधपुर
३१. श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
३२. श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
३३. श्री जसराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
३४. श्री मूलचंदजी पारख, जोधपुर
३५. श्री आसुमल एण्ड क., जोधपुर

९९. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन, श्रावकसंघ, दिल्ली-राजहरा

१०० श्री जवरीलालजी शान्तिलालजी सुराणा, बुलारम

१०१. श्री फतेराजजी नेमीचंदजी कर्णावट, कलकत्ता

१०२. श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी सुरट, गोहाटी

१०३. श्री जुगराजजी बरमेचा, मद्रास

१०४ श्री कुशालचंदजी रिखबचंदजी सुराणा, बुलारम

१०५. श्री माणकचंदजी रतनलालजी मुणोत, नागौर

१०६. श्री सम्पतराजजी चोरड़िया, मद्रास

१०७ श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भण्डारी, बेंगलोर

१०८. श्री रामप्रसन्न ज्ञान प्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर

१०९. श्री तेजराज जी कोठारी, मांगलियावास

११०. श्री ग्रमरचंदजी चम्पालालजी छाजेड, पादू बड़ी

१११. श्री मांगीलालजी शान्तिलालजी रुणवाल, हरसोलाव

११२. श्री कमलाकंवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री पारसमलजी ललवाणी, गोठन

११३. श्री लक्ष्मीचंदजी अशोककुमारजी श्री कुचेरा

११४ श्री भंवरलालजी मांगीलालजी बेता

११५. श्री कंचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास

११६. श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी

११७ श्री चांदमलजी धनराजजी मोदी, अज

११८. श्री मांगीलालजी उत्तमचंदजी बाफना

११९. श्री इन्दरचंदजी जुगराजजी बाफना,

१२०. श्री चम्पालालजी माणकचंदजी सिंघी,

१२१. श्री सचालालजी बाफना, औरंगाबाद

१२२. श्री भूरमलजी दुल्लीचंदजी बोकड़िया, सिटी

१२३. श्री पुखराजजी किशनराजजी तातेड़, सिकन्दराबाद

१२४. श्रीमती रामकुंवर धर्मपत्नी श्री चांदम लोढ़ा, बम्बई

१२५. श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खा (कुडालोर), मद्रास

गर्जन और विद्युत प्रायः ऋतु स्वभाव से ही होता है। अतः आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नही माना जाता।

५. निर्घात—विना बादल के आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन होने पर, या बादलों सहित आकाश मे कडकने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. यूपक—शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, को सन्ध्या चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा में बिजली चमकने जैसा, थोड़े थोड़े समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत आकाश मे जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

८ धूमिका कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघों का गर्भमास होता है। इसमें धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पडती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुंध पड़ती रहे, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

९ मिहिकाश्वेत—शीतकाल मे श्वेत वर्ण का सूक्ष्म जलरूप धुन्ध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१० रज उद्घात—वायु के कारण आकाश मे चारों ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है। स्वाध्याय नही करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के है।

औदारिक सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३. हड्डी, मांस और रुधिर—पचेंद्रिय तिर्यंच की हड्डी मास और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहां से यह वस्तुएँ उठाई न जाएं तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि मास और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एव बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमशः सात एव आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. श्मशान—श्मशानभूमि के चारो ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६ चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह, और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

१७. सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमशः आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।